

एम.ए.एच.आई. -03



# वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम

(इतिहास)

एम.ए.एच.आई. -03- आधुनिक विश्व का इतिहास - 6  
(युद्ध एवं औद्योगिक समाज-1917-1945)



वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम  
(इतिहास)

**खण्ड-6**

**इकाई संख्या**

<b>इकाई 26</b>	
भारत में राष्ट्रवाद (1919-1947)	5-22
<b>इकाई 27</b>	
ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल	23-34
<b>इकाई 28</b>	
सुदूर-पूर्व में संकट-मंचूरिया संकट	35-47
<b>इकाई 29</b>	
द्वितीय विश्व युद्ध की अवधि में सम्मेलन व समझौते	48-56

## पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार

निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं  
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता

इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम  
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रो. के.एस. गुप्ता

पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, मोहन लाल  
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

डा. श्रीमती कमलेश शर्मा

इतिहास विभाग, कोटा खुला  
विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. बी.आर. ग़ोवर

पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास  
अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रो. जे.पी. मिश्रा

पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू  
विश्वविद्यालय, वाराणसी

डा. बृजकिशोर शर्मा

इतिहास विभागाध्यक्ष, कोटा  
खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. याक़ूब अली खान

इतिहास विभाग कोटा खुला  
विश्वविद्यालय, कोटा

## पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. बी.के. शर्मा

इतिहास विभाग, कोटा खुला  
विश्वविद्यालय, कोटा

डा. बेनी गुप्ता

पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष  
राजकीय महाविद्यालय, कोटा

डा. एन.के. शर्मा

इतिहास विभाग, जयनारायण  
विश्वविद्यालय, जोधपुर

डा. याक़ूब अली खान

इतिहास विभाग कोटा खुला  
विश्वविद्यालय, कोटा

## पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. याक़ूब अली खान्

इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

## अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच  
कुलपति  
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.)एम.के. घड़ोलिया  
निदेशक(अकादमिक)  
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल  
प्रभारी अधिकारी  
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

## पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,  
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन -मार्च 2011

MAHI-03/ISBN No.-13/978-81-8496-262-8

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

## इकाई-26

### भारत में राष्ट्रवाद (1919-1947)

#### इकाई की रूपरेखा

- 26.0 उद्देश्य
- 26.1 प्रस्तावना
- 26.2 असहयोग आंदोलन 1920
  - 26.2.1 प्रथम विश्व-युद्ध का प्रभाव
  - 26.2.2 भारतीय क्रांतिकारियों की गतिविधियां
  - 26.2.3 1917 की रूस की बोलशेविक क्रांति का प्रभाव
  - 26.2.4 मॉटेग्यूचेम्सफोर्ड सुधारों से उत्पन्न निराशा
  - 26.2.5 रोलेट-एक्ट से उत्पन्न निराशा
  - 26.2.6 जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड
  - 26.2.7 कांग्रेस का नागपुर अधिवेशन, दिसम्बर, 1920
  - 26.2.8 असहयोग आंदोलन की प्रगति
- 26.3 राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरूप 1922-1937
  - 26.3.1 स्वराज दल की स्थापना एवं कार्यक्रम
  - 26.3.2 साइमन कमीशन एवं नेहरू रिपोर्ट
  - 26.3.3 वामपंथी एवं क्रांतिकारी आंदोलन की प्रगति
  - 26.3.4 सविनय अवज्ञा आंदोलन 1930-31
  - 26.3.5 1935 के भारतीय शासन विधान का विरोध
- 26.4 1937-47 भारत का राष्ट्रीय आंदोलन
  - 26.4.1 देशी रियासतों के जन संघर्ष
  - 26.4.2 साम्प्रदायिकता का विकास एवं पाकिस्तान की माँग
  - 26.4.3 भारत छोड़ो आंदोलन, 1942
  - 26.4.4 आजाद हिंद फौज
  - 26.4.5 भारत की आजादी के सहायक तत्व एवं आजादी
- 26.5 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 26.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 26.0 उद्देश्य

इस इकाई को पाठ्यक्रम में शामिल करने के पीछे हमारा यह उद्देश्य है-

(1) अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय परिवेश में भारत के स्वतंत्रता संग्राम को समझाना।

(2) 1919-1947 के मध्य भारत के राष्ट्रवाद के विभिन्न सोपानों की व्यवस्थित जानकारी देना।

## 26.1 प्रस्तावना

भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के साथ ही भारतीयों द्वारा प्रतिरोध आरम्भ हो गया था। किन्तु प्रारम्भिक प्रतिरोध असंगठित एवं अलग-थलग था। 1857 में पहली बार अंग्रेजी साम्राज्य को भारत के संगठित एवं व्यापक प्रतिरोध का मुकाबला करना पड़ा। 1857 के भारतीय विद्रोह को भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के नाम से जाना जाता है। अंग्रेज साम्राज्यवादियों द्वारा इसे कुचल दिया गया, किन्तु यह विद्रोह भारतीयों में राष्ट्रवाद की ज्वाला फूंकने में सफल रहा।

1857 के बाद अंग्रेजी साम्राज्यवादी स्वरूप में कुछ परिवर्तन आया। 1858 की महारानी विक्टोरिया की घोषणा के द्वारा भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन को समाप्त कर भारत को सीधे अंग्रेजी ताज के नियंत्रण में ले लिया। इस घोषणा द्वारा किये गये नीतिगत परिवर्तन नाम मात्र के थे भारत के साम्राज्यवादी शोषण का अंत नहीं हुआ था। अतः भारतीयों में बढ़ते हुए असंतोष की परिणति 1885 में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के रूप में हुयी।

1885 से 1918 तक के भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को दो भागों में बांटा जा सकता है। पहला 1885-1905 का समय जिसे उदारवादी राष्ट्रवाद का काल कहा जाता है। दूसरा 1905-1918 तक का समय जिसे उग्र राष्ट्रवाद के नाम से जाना जाता है। 1919 के बाद भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन अधिक व्यापक हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन का विस्तार सामाजिक एवं भौगोलिक दोनों रूपों में हुआ। बंगाल, महाराष्ट्र एवं पंजाब से गुजरात, संयुक्त प्रांत, बिहार, मध्य भारत, राजपूताना एवं आंध्र प्रदेश में पहुँचा। इसी प्रकार राष्ट्रवाद का प्रसार शहरों से छोटे कस्बों एवं गांवों में बढ़ा तथा मध्यमवर्ग, बुद्धिजीवी वर्ग प्रभावशाली पूंजीपति वर्ग, निम्न मध्यम वर्ग, किसानों एवं श्रमिकों में राष्ट्रवाद का प्रसार हुआ।

1919-1929 तक भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का प्रसार भारत के सभी भू-भागों एवं जन समुदायों में हो चुका था। 1930 तक किसान सभा एवं श्रमिक संगठन शक्ति के रूप में उभरे। 1930 के बाद देशी राज्यों में जनता के लोकप्रिय आंदोलन बढ़े। 1920 के असहयोग आंदोलन के बाद 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन ने भारतीय जनता के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को आगे बढ़ाया। द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान भारत की आजादी की लड़ाई नये एवं निर्णायक युग में प्रवेश कर गयी। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन ने क्रांति का रूप धारण कर लिया, जिसने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ें हिला दी। 1945 में युद्ध समाप्ति के बाद भी अंग्रेजी साम्राज्य के खिलाफ भारत में जन-आंदोलन निरन्तर रूप से चलते रहे। सेना एवं किसान विद्रोहों तथा श्रमिक आंदोलनों ने अंग्रेजी साम्राज्य एवं भारत के पूंजीपति एवं सामंतों के खिलाफ चुनौती उपस्थित कर दी। किसी भयानक क्रांति की आशंका ने अंग्रेजी साम्राज्य को भारत छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया एवं 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। उपरोक्त पृष्ठभूमि में

1919 से 1947 तक भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करना प्रासंगिक है।

## 26.2 असहयोग आंदोलन 1920

1920 का असहयोग आंदोलन भारत के राष्ट्रवादी आंदोलन की एक महत्वपूर्ण घटना है। इसने भारतीय समाज के सभी वर्गों एवं समुदायों को आंदोलित कर एक नयी चेतना का प्रादुर्भाव किया। इस आंदोलन की सहायक परिस्थितियों का अवलोकन निम्नांकित बिंदुओं के द्वारा कर सकते हैं।

### 26.2.1 प्रथम विश्व-युद्ध का प्रभाव

प्रथम विश्वयुद्ध में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने भारत की जनशक्ति एवं आर्थिक शक्ति को भारी पैमाने पर युद्ध में झोक दिया, जिससे भारतीय जनता पर मुसीबतों का नया पहाड़ आ टूटा था। भारत की अर्थ-व्यवस्था चौपट हो गयी थी एवं कृषि की पैदावार में भारी गिरावट आ गयी थी। 1918 - 1919 में जो भयंकर अकाल पड़ा और महामारी फैली, उनसे लगभग एक करोड़ बीस लाख लोग कालकवलित हो गये थे। किसान, मेहनतकशों और दूसरे शहरी तबकों की हालत तेजी से बिगड़ती जा रही थी।

युद्ध वर्षों के दौरान के धन निष्कासन का स्वरूप भारतीय मानव-शक्ति तथा वस्तुओं की समाप्ति के रूप में सामने आया। भारतीय सेना को बढ़ाकर 15 लाख कर दिया और नियम बनाया कि भारतीय सेना जहाँ भी भेजी जायेगी उसका सारा खर्च भारत को वहन करना होगा, साथ ही भारत में जो अंग्रेजी सेना रहेंगी उसका भी खर्च उसे ही देना होगा। युद्ध समाप्त होने के बाद भी उन्होंने फौज पर होने वाला खर्च कम न किया, बल्कि बढ़ता ही गया। लाखों नौजवान किसानों के फौज में जाने के कारण कृषि व्यवस्था बिगड़ गयी।

युद्ध के परिणाम स्वरूप भारत के रक्षा व्यय में 300% की वृद्धि हुयी जिसके कारण भारत में करों में भारी बढ़ोतरी हुयी एवं अधिकांश भार भू-राजस्व पर पड़ा। युद्ध की मांग के कारण औद्योगिक वस्तुओं के दाम बढ़ गये। पूर्ति के अभाव में आयातित उत्पादनों की कीमतें बढ़ी। भारतीय व्यापारिक कृषि उत्पाद मुख्यतः जूट एवं नील की निर्यात कीमतें नहीं बढ़ी। कुल मिलाकर युद्ध का अर्थ हुआ परेशानियाँ एवं अधिसंख्य भारत के लोगों के रहन-सहन के स्तर में भारी गिरावट। उदाहरणार्थ निर्मित कपड़े का उपभोग जो 1913-14 में 5102 मिलियन यार्ड था। वह 1919-20 में 2899 मिलियन यार्ड रह गया।

युद्ध के परिणाम स्वरूप किसान असंतोष भारत के विभिन्न भागों में किसान विद्रोही एवं आंदोलनों के रूप में फूट पड़ा। कुल मिलाकर प्रथम विश्व-युद्ध ने भारतीय एवं ब्रिटिश हितों के मध्य व्याप्त अन्तर्विरोधों को तीव्र कर दिया था।

युद्ध के दौरान भारतीय व्यापारियों ने भारी धनार्जन किया। पूँजीपति एवं व्यापारी हमेशा जनता की बदहाली का शोषण करता है। मूल्य वृद्धि एवं माल के अभाव का लाभ भी व्यापारियों को मिला। व्यापारिक समुदायों ने इसका भारी लाभ उठाया। उदाहरणार्थ जी. डी. बिडला एवं स्वरूप चन्द, हुकुमचन्द कलकत्ता स्थित मारवाड़ी व्यापारिक घरानों ने इस दौरान इतना धन

कमाया कि युद्ध की समाप्ति के तुरंत बाद दोनों घरानों ने कलकत्ता के समीप जूट मिल स्थापित की। युद्ध के दौरान भी पूंजीपतियों को स्थानीय उत्पादन कार्य में काफी लाभ मिला। उदाहरण के लिए युद्ध-काल में भारत में कपड़े का आयात अधिक नहीं हो सका था एवं आयातित कपड़े पर 7% का शुल्क था। जबकि भारत में उत्पादित होने वाले कपड़े पर 31/2% शुल्क था अतः युद्धकाल में भारत में औद्योगिक विकास हुआ। जिसका परिणाम था औद्योगिक श्रमिकों की संख्या में वृद्धि। युद्ध का आर्थिक भार श्रमिकों पर भी पड़ा एवं एक नयी प्रवृत्ति भारत के जन आंदोलनों में श्रमिकों की भागीदारी आरम्भ हुई। युद्ध काल में एवं युद्धोपरांत भारत में श्रमिकों की भागीदारी आरम्भ हुई। युद्ध काल में एवं युद्धोपरांत भारत में श्रमिक आंदोलनों की निरन्तर झड़ी लग गयी। पहला नियमित श्रमिक संगठन अप्रैल, 1918 में मद्रास लेबर यूनियन गठित हुआ। 1920 में श्रमिक संगठनों की संख्या 125 हो गयी थी। नवम्बर, 1920 में ही बम्बई में अखिल भारतीय स्तर के श्रमिक संगठन ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस गठित हुआ।

भारत का पूंजीपति वर्ग जिसने युद्ध काल में दिन दूनी और रात चौगुनी प्रगति की थी अपने स्वार्थ सिद्धी के लिए राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होने लगा। एक और वह अंग्रेजी पूंजी के साथ प्रतियोगिता से भयभीत था एवं दूसरी ओर श्रमिकों की बढ़ती हुई शक्ति से। उसे दोनों भयों से मुक्ति का रास्ता अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ सहयोग में दिख रहा था। युद्ध के आर्थिक प्रभावों से उत्पन्न कारणों के अतिरिक्त: कुछ वैचारिक कारणों एवं नयी चेतना के प्रसार में भी प्रथम विश्व-युद्ध का योगदान दिखाई देता है। युद्ध के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूंजीवादी देशों के आंतरिक अन्तर्विरोध बढ़ गये थे। इस समय पूंजीवाद एवं उपनिवेशवाद के खिलाफ अन्तर्राष्ट्रीय उभार था। युद्ध से लौटे भारतीय सिपाही अपने साथ विश्व-व्यापी क्रांतिकारी विचार लेकर लौटे थे। इन सैनिकों ने दुनियां के देशों की प्रजातांत्रिक व्यवस्था, स्वतंत्रता तथा समृद्धि के संदर्भ में भारतीयों को स्थानीय स्तर पर बताकर नयी चेतना का संचार किया।

### 26.2.2 भारतीय क्रांतिकारियों की गतिविधियां

युद्ध के दौरान ही गदर पार्टी और दूसरे क्रांतिकारी गुटों ने सशस्त्र क्रांति के जरिए ब्रिटिश सत्ता को भारत से उखाड़ फेंकने की कोशिश की थी। कितने ही क्रांतिकारियों को फांसी, गोली या आजीवन कारावास की सजा देकर उन्हें कुचल दिया गया था। ब्रिटिश शासकों ने घृणित भारत सुरक्षा कानून द्वारा बड़ी कठोरता से उन नौजवान क्रांतिकारियों का दमन किया जो साम्राज्यवाद के खिलाफ और देश की आजादी के लिए बराबर लड़ते आ रहे थे। उन्हें कड़ी सजाएँ दी या नजरबन्द किया। एक और भारतीयों को क्रांतिकारियों से प्रेरणा मिली एवं दूसरी ओर ब्रिटिश शासन के दमनात्मक स्वरूप के खिलाफ लड़ने का साहस आया।

### 26.2.3 1919 की रूस की बोलशेविक क्रांति का प्रभाव

भारतीय जनता मुख्यतः किसान, मजदूर एवं मध्यम वर्ग को रूस की क्रांति ने भारी प्रभावित किया था। इसने भारत के कृषक, श्रमिक एवं दलित वर्गों में आत्म-विश्वास एवं नवचेतना का संचार किया था। फरवरी, 1921 में संयुक्त प्रांत (यू. पी) के किसान आंदोलनों की



गुप्तचर रिपोर्ट में बोल्शेविकवाद की महक बताई थी। 1921 की राजपूताना एजेन्सी रिपोर्ट में लिखा था कि बिजौलिया के किसान सीधे रूस की क्रांति से प्रभावित थे एवं मेवाड (उदयपुर) में किसानों ने महाराज को धमकी दी कि उसकी हालत जार की सी हो गयी। अतः 1920 के असहयोग आंदोलन की सहायक परिस्थितियां उत्पन्न करने में रूस की क्रांति का भारी योगदान माना जा सकता है।

#### 26.2.4 मांटैग्यू-चेम्स फोर्ड सुधारों से उत्पन्न निराशा

प्रथम-विश्वयुद्ध के दौरान काँग्रेस का समर्थन ब्रिटेन को था एवं उनका समर्थन इस आशा और विश्वास पर आधारित था कि युद्धोपरांत ब्रिटिश शासक भारत की आजादी की दिशा में कुछ अवश्य करेंगे। वैसे भी 1917 की रूस की क्रांति के बाद घटनाएँ तेजी से आगे बढ़ने लगी तथा विश्व के पराधीन देशों की स्वाधीनता का सवाल प्रमुख बन गया था। 1917 में भारत सचिव मांटैग्यू-चेम्सफोर्ड के नाम से भारत में शासन सुधारों सम्बन्धी घोषणा प्रकाशित हुयी। इस घोषणा में कहा गया था कि भारत के ब्रिटिश शासन का लक्ष्य 'स्वायत्त शासन संस्थाओं का क्रमिक विकास करना है। ताकि साम्राज्य के अविभाज्य अंग के रूप में भारत धीरे-धीरे उत्तरदायी सरकार प्राप्त कर सके। इस घोषणा के आधार पर 1919 का भारत सरकार अधिनियम ब्रिटिश संसद ने पारित किया।

इन तथाकथित सुधारों से भारतीयों को भारी निराशा हुयी थी। इसी अधिनियम के द्वारा भारत में द्वैध शासन का आरम्भ हुआ था। कहने के लिए कुछ भी हो किन्तु इसका असली उद्देश्य किसी प्रकार भारत को स्वाधीनता की तरफ ले जाना न था, बल्कि नयी परिस्थितियों में उसे ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बनाये रखना था। उसमें भारत के लिए स्वशासन का कोई प्रावधान नहीं था। इसके अनुसार गवर्नर जनरल के मातहत एक द्विसदनीय विधान मंडल-राज्य परिषद् (काउंसिल आफस्टेट) और विधान सभा (लेजिस्लेटिव असंबली) बनाया जाना था, जिनके अधिकारों को सीमित रखा गया था। बड़े प्रांतों के लिए द्विसदनीय एवं छोटे प्रांतों के लिए एक सदनीय विधान मंडल की व्यवस्था की गयी थी। शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा कृषि विभाग ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त भारतीय मंत्रियों को हस्तांतरित किये जाने थे, जबकि सभी महत्वपूर्ण विभागों को अंग्रेजों के ही हाथों में रहना था।

सम्पत्ति, शिक्षा, आदि विभिन्न योग्यता प्रतिबन्धों के कारण मताधिकार केवल 1.5 प्रतिशत भारतीय जनता को मिल सकता था। निर्वाचन प्रणाली सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व पर आधारित की जानी थी, इस प्रकार ब्रिटिश शासक हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य को भड़का कर समस्त भारत की जनता द्वारा एक्यबद्ध होकर किये जा रहे स्वाधीनता संघर्ष को क्षीण बनाना चाहते थे। काँग्रेस ने इस अधिवेशन को निराशाजनक और असन्तोषजनक बताया। ब्रिटेन से और अधिक रियायतें पाने की कोशिश में काँग्रेस ने जन समर्थन का सहारा लिया। उसके नेता बड़े पैमाने पर जन प्रदर्शनों, विदेशी मालों के बहिष्कार, आदि के तरीके इस्तेमाल करने लगे। इन सुधारों एवं भारत सरकार अधिनियम से उत्पन्न निराशा ने भारत के स्वाधीनता आंदोलन का मार्ग-प्रशस्त किया।

### 26.2.5 रौलेट-एक्ट से उत्पन्न आक्रोश

1919 के भारत सरकार अधिनियम के साथ ही ब्रिटिश शासन ने भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के दमन को सरल बनाने के लिए 18 मार्च, 1919 को रौलेट-एक्ट पारित किया। इसके द्वारा युद्ध काल में लगे नागरिक अधिकारों पर नियंत्रण को जारी रखने का प्रयास किया गया था। राजनीतिक अपराधियों के लिए विशेष अदालतों की व्यवस्था की गयी थी किसी भी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाये न्यायिक हिरासत में लिया जा सकता था। इतना ही नहीं बल्कि किसी भी संगठन या समाचार-पत्रों पर प्रतिबन्ध लगाने, सभाओं को भंग करने तथा तलाशी लेने का ब्रिटिश प्रशासन को अधिकार दिया गया था। इससे पुलिस की शक्ति में भारी बढ़ोतरी हो गयी थी। इसने सक्रिय राजनीतियों को तो सीधे रूप में प्रभावित किया था। किन्तु आम जनता के नागरिक अधिकारों पर भी इसका प्रहार कोई कम नहीं था। इस एक्ट से उत्पन्न आक्रोश की परिणिति जन-आंदोलनों के रूप में हुयी।

इस समय भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में गांधी जी का पर्दापण एक महत्वपूर्ण घटना थी। वे दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ होने वाले अत्याचारों के खिलाफ सत्याग्रह के माध्यम से सफलता पूर्व लड़े थे। 1915 में गांधी जी भारत लौटे। भारत आकर 1917 में चम्पारन एवं खेड़ा के किसान आंदोलन एवं 1918 में अहमदाबाद मिल मजदूरों के आंदोलनों का संचालन किया। इन आंदोलनों में आंशिक सफलता मिली। मार्च, 1919 में गांधी जी ने रौलेट-एक्ट का विरोध आरम्भ किया। 23 मार्च, 1919 को गांधी जी ने रौलेट एक्ट विरोधी आंदोलन का नेतृत्व विधिवत रूप से सम्भाल लिया एवं जगह-जगह स्वयं सेवकों ने अहिंसात्मक तरीके से गिरफ्तारियां देना आरम्भ किया।

गाँधी जी का प्रभाव तब और भी बढ़ गया, जब अखिल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने रौलेट-एक्ट के विरुद्ध जिसमें सारी ही जनता में घोर रोष व्याप्त हो गया था, सत्याग्रह अभियान आरम्भ करने का कार्य उन्हें सौंपा। गांधीजी को पहल कदमी पर काँग्रेस ने 30 मार्च, 1919 को सारे देश में आम हड़ताल का ऐलान किया, जो बाद में 6 अप्रैल, 1919 कर दिया। यद्यपि आम हड़ताल का दिन बदल गया था हालांकि 30 मार्च को सारे देश में अपने आप हड़ताल का दिन बदल गया था किन्तु 30 मार्च को सारे देश में अपने आप हड़ताल हो गयी। राजधानी दिल्ली का सारा कारोबार ठप्प हो गया। अमृतसर, लाहौर, मुल्तान, जालंधर, करनाल, अहमदाबाद और दूसरे शहरों में भी उसी दिन हड़ताल प्रदर्शन, और सभाएं हुयीं। उसके बाद भी सारे देश में, खासकर पंजाब में प्रतिवाद आंदोलन जारी रहा। पंजाब में उसने विशेषतः उग्र रूप धारण किया, क्योंकि युद्धकाल में सेना में अनिवार्य भर्ती और अनाज की वसूली से यही प्रांत सबसे अधिक प्रभावित हुआ था।

6 अप्रैल की आम हड़ताल और भी अधिक शक्तिशाली थी। साम्राज्यी शासकों ने मुसलमानों को पंजाब में हिन्दु और सिखों के खिलाफ भड़काने की कोशिश की, किन्तु कामयाबी नहीं मिली। सारे देश में साम्राज्यवादियों के खिलाफ जनता की अदृष्ट एकता देखी गयी।

### 26.2.6 जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड

पंजाब में रौलेट-एक्ट विरोधी आंदोलन उग्ररूप धारण कर चुका था। ब्रिटिश नौकरशाही ने पंजाब में ऐसा दमन करने का फैसला किया कि सारा भारत कांप उठे एवं आतंकित होकर साम्राज्य विरोधी आंदोलन छोड़ दे। 10 अप्रैल, 1919 को पंजाब के गवर्नर डायर ने अमृतसर के दो प्रमुख नेताओं डॉ. सैफुद्दीन किचलू और डॉ. सत्यपाल को गिरफ्तार करवाकर अमृतसर से निर्वासित कर दिया। इन गिरफ्तारियों के विरोध में जनता उमड़ पड़ी एवं जनता और पुलिस व फौज के मध्य खुला संघर्ष शुरू हो गया। 13 अप्रैल, 1919 को अमृतसर में जनरल डायर के आदेश पर सैनिकों ने जलियाँवाला बाग में एक शांतिपूर्ण सभा में भाग ले रहे हजारों शहर वासियों और किसानों पर गोलियां चला दी। निहत्थी भीड़ में कोई 1000 लोग मारे गये और इससे भी ज्यादा घायल हुए।

किन्तु ये सब घोर पाशविक कृत्य भी भारतीय जनता को भयभीत न कर सके। अप्रैल-मई, 1919 के लगभग सारा ही पंजाब विप्लव का गढ़ बन गया। अमृतसर के जलियाँवाला बाग हत्याकांड का समाचार आग सी तेजी से सारे देश में फैल गया। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली और दूसरे प्रांतों और नगरों में विराट पैमाने पर विरोध आंदोलन छिड़ गया। किन्तु उसके पास केन्द्रीकृत नेतृत्व और सुस्पष्ट लक्ष्य, दोनों का ही अभाव था। फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार अत्यन्त नृशंसतापूर्वक उसे दबाने में सफल हो गयी। दमन के उपरांत भी भारत में राष्ट्रियता की लहर में कोई कमी नहीं आई थी। इंतजार था केवल संगठित प्रयासों का।

### 26.2.7 काँग्रेस का नागपुर अधिवेशन, दिसम्बर, 1920

युद्धोपरांत उत्पन्न विशेष परिस्थितियों के कारण भारत के सभी समुदायों में आंदोलन की प्रवृत्ति का पदार्पण हुआ। रौलेट एक्ट के विरोध एवं जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड विरोध ने भारत में जन आंदोलन का रूप धारण कर लिया था। काँग्रेस इस जनक्रोध एवं जन आंदोलन के दबाव में कुछ कदम उठाने के लिए मजबूर थी। दिसम्बर, 1920 में काँग्रेस के नागपुर अधिवेशन में उसके कार्यक्रम तथा संविधान में संशोधन किये गये। जन व्यापी अहिंसक असहयोग आंदोलन के जरिये स्वराज्य प्राप्ति को संघर्ष का लक्ष्य घोषित किया गया। भारतीयों को अपनी सरकारी पदवियां और पद त्याग देने थे, सरकारी दफ्तरों तथा स्कूलों का बहिष्कार करना था और भूमि लगान समेत किसी भी प्रकार का कर नहीं देना था। खिलाफत आंदोलन एवं असहयोग आंदोलन का संयुक्त अभियान दिसम्बर, 1920 में आरम्भ हो गया।

### 26.2.8 असहयोग आंदोलन की प्रगति

काँग्रेस के द्वारा असहयोग आंदोलन की घोषणा के साथ ही भारत का जन समुदाय उमड़ पड़ा। अनेक लोगों ने सरकारी पद एवं पदवियां छोड़ दीं। सरकारी स्कूल कालेजों से भारी संख्या में विद्यार्थी निकलकर राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े। विदेशी वस्तुओं के परित्याग एवं स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का नारा बुलंद हुआ। 1921 में यह आंदोलन काफी आगे बढ़ चुका था। 17 नवम्बर, 1921 को प्रिंस ऑफ वेल्स बम्बई पहुँचे अधिकारियों ने उसके स्वागत के

लिए बड़ी तैयारियां की थी, किन्तु काँग्रेस ने बहिष्कार और प्रतिवाद प्रदर्शन का नारा बुलन्द किया। इस प्रदर्शन में सारा शहर उमड़ पड़ा। इन प्रदर्शनकारियों को प्रधान सड़कों से हटाने के लिए फौज बुलानी पड़ा। 21 नवंबर, तक जनता और सेना व पुलिस के मध्य टक्करें होती रहीं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार इस संघर्ष में 30 आदमी मारे गये तथा 200 से अधिक गिरफ्तार हुए। इसके बाद प्रिंस ऑफ वेल्स जिस शहर में गये, वही उनका स्वागत आम हड़ताल से किया गया। काँग्रेस के नेता उपरोक्त घटनाओं से खुश नहीं थे, क्योंकि उन्हें आंदोलन अपने हाथ से निकलता नजर आ रहा था।

असहयोग आंदोलन के प्रभाव में भारत के मेहनतकश समुदाय भारी आंदोलित हो गये थे। इस समय संयुक्त प्रांत (यू. पी) में किसान आंदोलन काफी आगे बढ़ चुका था, जहाँ के किसानों ने "एका" नाम से भारत का पहला किसान संगठन बनाया था। इन किसानों ने स्थानीय अधिकारियों की सत्ता मानने से इंकार कर दिया और अपनी स्थानीय पंचायतें बनायीं। "एका" ने किसानों को कर न देने और बेदखलियों का प्रतिरोध करने के, लिए आह्वान किया। इसी प्रकार 1970 में ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन काँग्रेस की स्थापना के साथ ही कारखाना श्रमिकों की हड़तालों की झड़ी लग गयी थी। मालाबार (केरल) के मोपला किसान 1921 में विद्रोही हो गये। इनके विद्रोह का निशाना स्थानीय शोषक जमींदार एवं सरकारी अधिकारी हुए। 1921-22 में आंध्र प्रदेश के कोण्डा डोरा आदिवासियों ने विद्रोह कर दिया। राजपूताना के मेवाड़ राज्य (उदयपुर) में किसान आंदोलन विजयसिंह पथिक के नेतृत्व में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। जागीरदारों एवं सरकारी अधिकारियों के खिलाफ किसानों ने खुला मोर्चा लेना आरम्भ कर दिया था। 1921-22 में राजपूताना के भीलों के आंदोलन ने भी बड़ा जोर पकड़ा। सामंती और साम्राज्यवादी शोषण के खिलाफ मोतीलाल तेजावत ने भीलों को जगाना शुरू किया था।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के पूंजीपति और जमींदार नेता जन आंदोलन के बड़े पैमाने, उसके उग्र स्वरूप और इस बात को देखकर डर गये थे कि वह साम्राज्यवाद के खिलाफ ही नहीं, बल्कि उनके सभी उपदेशों और प्रचार के बावजूद स्थानीय शोषकों के विरुद्ध भी लक्षित था। काँग्रेस असहयोग आंदोलन को वापस लेना चाहती थी। केवल उपयुक्त बहाने की आवश्यकता थी जो काँग्रेस के नेताओं को 4 फरवरी, 1922 को चौरी-चौरा काण्ड से मिल गया। जहाँ किसानों की उत्तेजित भीड़ ने पुलिस की ज्यादतियों का प्रतिरोध करते हुए 21 सिपाहियों समेत सारी पुलिस चौकी को जला डाला था। गाँधीजी ने शीघ्र काँग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक बारडौली में बुलाकर 12 फरवरी, 1922 को प्रस्ताव पास कराकर असहयोग आंदोलन को बन्द कर दिया।

राष्ट्रीय कांग्रेस के इस आत्मसमर्पण से ब्रिटिश शासकों को स्वाधीनता संघर्ष के पहले राष्ट्र-व्यापी उभार को दबाने में सफलता मिली। अन्य स्वतंत्र जन आंदोलन असहयोग आंदोलन से प्रेरणा एवं नैतिक सहयोग प्राप्त कर चल रहे थे, उनको ब्रिटिश शासकों ने काँग्रेस द्वारा असहयोग आंदोलन की समाप्ति की घोषणा के बाद सैनिक शक्ति से कुचल दिया।

असहयोग आंदोलन की परिणिति कुछ भी रही हो, किन्तु आंदोलन के स्वरूप ने दिखा दिया था कि ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के स्थायी प्रभुत्व के युग का अब निश्चित रूप से अवसान

समीप था। अब भारत की जनता अपनी स्वाधीनता हेतु संघर्ष करने के लिए पूरी तरह जागृत हो चुकी थी।

### 26.3 राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरूप, 1922-1937

1920-22 के मध्य असहयोग आंदोलन को भारत के, जन राष्ट्रवाद का प्रतीक कहा जा सकता है। इस समय उत्पन्न हुई राष्ट्रीय चेतना ने आगे भारत की आजादी की लड़ाई को प्रभावित किया। असहयोग आंदोलन के बंद होने से भारत की स्वतंत्रता के लिए चल रहे जन आंदोलनों को भारी आघात पहुँचा था। 1922-1937 के मध्य पुनः राष्ट्रीय उभार उत्पन्न हुआ जिसने भारत की आजादी का मार्ग प्रशस्त किया। इस काल के राष्ट्रीय आंदोलन का विश्लेषण एवं मूल्यांकन आगे के बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है।

#### 26.3.1 स्वराज दल की स्थापना एवं कार्यक्रम

1922 में असहयोग आंदोलन को बन्द कर दिये जाने के बाद गाँधीजी की नीतियों से असंतुष्ट काँग्रेस के कुछ नेताओं ने चिरंजनदास एवं मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में चुनाव लड़ने और ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ संघर्ष को विधान सभाओं के अन्दर चलाने के लिए स्वराज दल की स्थापना की। यह दल 1927 तक ही जीवित रह पाया था। नवम्बर, 1923 में स्वराज दल को चुनावों में भारी सफलता मिली क्योंकि मतदाता इनके संघर्ष के नये तरीके से भारी आकर्षित हुए थे।

लेकिन विधान सभा में प्रवेश करते ही स्वराज दल ने ब्रिटिश नौकरशाही के साथ सहयोग आरम्भ कर दिया तथा वैधानिक विरोध तक अपने आपको सीमित कर लिया। चितरंजन दास ने 1925 में हुए बंगाल राजनीतिक सम्मेलन में जो भाषण दिया वह स्वराज दल की विचारधारा को स्पष्ट करता है। इसमें उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य की बड़ी प्रशंसा की, ब्रिटिश शासकों के हृदय में परिवर्तन के लक्षण देखे, बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन की कड़ी निन्दा की, सरकार के सामने सहयोग का प्रस्ताव रखा, सहयोग का एक आधार क्रांतिकारी आंदोलन के खिलाफ लड़ना बताया और घोषणा की कि भारत पूर्ण स्वाधीनता नहीं, ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वायत्त शासन चाहता है। 1926 के चुनाव में यह दल बुरी तरह पराजित हुआ। 1927 में भारत के संविधान का रूप निर्धारण हेतु ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन बैठाया और इसमें एक भी भारतीय को नहीं रखा। अतः संवैधानिक संघर्ष करने वाला एवं अंग्रेजों के साथ सहयोग करने के लिए तत्पर स्वराज दल 1927 के बाद स्वतः अप्रभावी हो गया।

इस दल की विशेष भूमिका राष्ट्रीय आंदोलन में नहीं रही किन्तु इसने उदारवादी तरीके से आंदोलन को जारी अवश्य रखा।

#### 26.3.2 साइमन कमीशन एवं नेहरू रिपोर्ट

नवम्बर, 1927 में साइमन कमीशन नियुक्त किया गया था। इसका कार्य भारत के भावी संविधान का प्रारूप तैयार करना था। इस कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य नहीं रखा

गया था। अतः भारत के स्वाधीनता आंदोलन के नेताओं एवं जनता द्वारा इसका विरोध करना एक स्वाभाविक बात थी।

इस कमीशन ने 3 फरवरी, 1928 को भारत भूमि पर पैर रखा। जहाँ भी वह गया, उसका स्वागत हड़तालों और विरोधी प्रदर्शनों से हुआ। 3 फरवरी को यह आयोग बम्बई पहुँचा जहाँ उसे बड़े विरोध का सामना करना पड़ा। काँग्रेस, खिलाफत कमेटी, मजदूर किसान पार्टी आदि ने उसके खिलाफ प्रदर्शन किया। साइमन कमीशन वापस जाओ के नारे बम्बई की सड़कों गूँज उठी। कमीशन शीघ्र बम्बई छोड़कर दिल्ली भागा। वहाँ भी विरोध प्रदर्शनों का सामना करना पड़ा। कमीशन की यही हालत कलकत्ता में हुयी। लाहौर में साइमन कमीशन विरोधी प्रदर्शन को बर्बरतापूर्ण पुलिस ज्यादतियों का शिकार होना पड़ा। सैण्डर्स नाम ब्रिटिश अफसर ने लाला लाजपतराय को इतना पीटा कि उस चोट से उनकी मृत्यु हो गयी। देश भर में इस जुल्म के खिलाफ आक्रोश व्याप्त हो गया। कुल मिलाकर भारतीयों ने साइमन कमीशन का खुला बहिष्कार किया।

साइमन कमीशन के बहिष्कार के साथ ही मई, 1928 में तीसरे सर्वदल सम्मेलन में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में भारत का संविधान जुलाई 1928 तक तैयार करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी ने जो संविधान तैयार किया, वही नेहरू रिपोर्ट के नाम से जानी जाती है। इस कमेटी ने समय पर अपना कार्य पूर्ण कर लिया था। इसकी रिपोर्ट साइमन कमीशन के पास भी भेजी गयी। सभी दलों के विचार हेतु भी इसे प्रस्तुत किया गया था।

इस रिपोर्ट के मुख्य तीन हिस्से थे : भारत की भावी स्थिति पर नागरिकों के मौलिक अधिकारों और हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों पर इसमें भारत की प्रस्तावित भावी स्थिति ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत स्वायत्तता अर्थात् "डोमिनियन स्टेट्स" था। नागरिक अधिकारों में भाषण तथा लेखन की स्वतंत्रता एवं धर्म-जाति के आधार पर भेद-भाव की समाप्ति शामिल थे। हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों के मामले में प्रांतीय विधान-सभाओं में सीटों के वितरण की बातें थी।

मुस्लिम लीग ने इस रिपोर्ट को नामंजूर कर दिया। काँग्रेस की कई स्थानीय इकाइयों एवं सर्वदल सम्मेलनों में "डोमिनियन स्टेट्स" की कड़ी आलोचना की और पूर्ण स्वाधीनता की माँग की। कम्युनिस्टों ने नेहरू रिपोर्ट पर अपना मत दिसम्बर, 1928 में मजदूर किसान दलों के अखिल भारतीय सम्मेलन में जाहिर किया। उन्होंने "डोमिनियन स्टेट्स" की जगह भारत की पूर्ण स्वाधीनता की माँग की और बड़ी-बड़ी जमींदारियों को बिना मुआवजे समाप्त करने की माँग की। नेहरू रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही काँग्रेस के अन्दर असंतुष्ट लोगों ने जगह-जगह "इंडिपेंडेन्सिगॉ" की स्थापना कर पूर्ण स्वाधीनता की माँग करना शुरू की। किन्तु गाँधी जी की मध्यस्थता के कारण दिसम्बर, 1928 में काँग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में इस रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया। स्वीकृति के बाद भी यह रिपोर्ट विवादास्पद बनी रही तथा काँग्रेस के वामपंथी नेता इससे असंतुष्ट बने रहे। जनता में काँग्रेस की साख भी इससे गिरी तथा भारत क्रांतिकारी आंदोलन ने इस दौरान काफी बल प्राप्त कर लिया था।

### 26.3.3 वामपंथी एवं क्रांतिकारी आंदोलनों की प्रगति

काँग्रेस द्वारा असहयोग आंदोलन को वापस लेने से जनता में भारी निराशा व्याप्त हो गयी थी। किन्तु वामपंथी एवं क्रांतिकारी आंदोलन में व्यवधान का यह दौर अधिक न चला। 1926 के अंत तक ट्रेड यूनियनों की सदस्य संख्या कोई तीन लाख तक पहुँच चुकी थी। कम्युनिस्ट समूह अपनी गतिविधियों का दायरा बढ़ाते जा रहे थे। दिसम्बर, 1925 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई इसके बाद भारत के राजनीतिक मंच पर अनेक मजदूर-किसान पार्टियां प्रकट हुईं 1926 में काँग्रेस के अन्तर्गत "लेबर स्वराज पार्टी" की स्थापना हुयी तथा बंगाल में मजदूर विकास पार्टी बनी। मार्च, 1927 में बम्बई में मजदूर किसान (कामकारी-खेतकारी) पार्टी की स्थापना हुयी। इसी वर्ष पंजाब में मजदूर किसान पार्टी की स्थापना हुई जिसे किरती-किसान पार्टी के नाम से जाना जाता है।

दिसम्बर, 1928 के अन्तिम सप्ताह में कलकत्ता में मजदूर किसान दलों का अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ तथा "आल इण्डिया वर्क्स एण्ड पेजेन्टस पार्टी" (अखिल भारत मजदूर किसान पार्टी) का निर्माण हुआ। 1928 के आसपास अनेक किसान एवं मजदूर आंदोलन हुए। कम्युनिस्टों को सरकारी दमन का शिकार होना पड़ रहा था। 1929 में कम्युनिस्टों पार्टी के अनेक नेताओं पर मेरठ षड्यंत्र मुकद्दमा चलाकर जेलों में डाल दिया गया था।

इस समय भारत का युवा आंदोलन भी काफी आगे बढ़ चुका था। 1928 में ऑल इण्डिया यूथ लीग की स्थापना हुयी। पंजाब में भारत नौजवान सभा का गठन भगतसिंह जैसे क्रांतिकारियों ने किया। इसी -समय भगतसिंह, राजगुरु एवं सुखदेव वगैरह ने "हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोशियसन की स्थापना की इसके सैनिक संगठन का नाम रिपब्लिकन आर्मी रखा गया। इसका उद्देश्य स्वाधीनता प्राप्त करना और समाजवादी राज्य की स्थापना करना घोषित किया था। जन-आंदोलन तथा सशस्त्र संघर्ष को इन्होंने अपनी व्यूह रचना का अंग बनाया।

उपरोक्त सभी संगठन कमोबेश समाजवादी अथवा साम्यवादी विचारधारा से ओत-प्रोत थे। इनका उद्देश्य उपनिवेशवाद, पूंजीवाद एवं सामंतवाद को समूल नष्ट कर एक जनवादी किसान-मजदूरों की व्यवस्था स्थापित करना था। इनका त्याग एवं आत्म बलिदान उच्च कोटि की देश-भक्ति से परिपूर्ण था। इनकी गतिविधियों एवं संघर्ष का राष्ट्रीय आंदोलन एवं राष्ट्र मुक्ति में महत्वपूर्ण योगदान था। ये अपने असली उद्देश्य जनवादी व्यवस्था की मंजिल तक नहीं पहुँच पाये क्योंकि इन्हें सरकारी दमन का अधिक शिकार होना पड़ा। इनको न केवल सरकारी बल्कि भारत के पूंजीपति एवं सामंत वर्गों के विरोध का भी सामना करना पड़ा। किन्तु 1922-1929 के काल में इन्हीं संगठनों ने भारत के राजनीतिक शून्य को अपनी कुर्बानियों से भरा।

देश के इतिहास में 8 अप्रैल, 1929 की घटना स्मरणीय है। इसी दिन भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली में केन्द्रीय विधान सभा भवन में बम फेंके। चेतवनी युक्त पर्चे भी फेंके गये जिसमें भारत की आजादी की बात कही गयी थी। दोनों को तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया तथा लाहौर षड्यंत्र मुकद्दमा दर्ज कर इनके साथियों की भारी पैमाने पर गिरफ्तारी

का अभियान आरम्भ हुआ 12 जून, 1929 को भगतसिंह एवं बटुकेश्वर दत्त को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गयी जो बढ़ाकर फांसी की सजा में बदल दी गयी। 23 मार्च, 1931 को भगतसिंह, राजगुरु एवं बटुकेश्वर दत्त को फांसी दे दी गयी।

### 26.3.4 सविनय अवज्ञा आंदोलन 1930-31

काँग्रेस 1928 में ब्रिटिश सरकार के समक्ष नेहरू रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद कुछ नहीं कर सकी। देश में क्रांतिकारी एवं समाजवादी दल अपनी राजनीतिक पकड़ मजबूत करते जा रहे थे। काँग्रेस में वर्चस्व पूंजीवादी एवं सामंती तत्वों का था जो उभरती हुयी नई राजनीतिक प्रवृत्तियों से भयभीत थे। अतः क्रांतिकारी तथा समाजवादी दलों को अप्रभावी करने के लिए काँग्रेस ने जन आंदोलन का कार्यक्रम बनाया। इसका दूसरा कारण नेहरू रिपोर्ट का मुद्दा था। एक तो काँग्रेस का एक हिस्सा इस रिपोर्ट से सहमत नहीं था दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार ने भी इसे स्वीकार नहीं किया था। काँग्रेस की लोकप्रियता भी काफी घट गयी थी। जिसे पुनः जन आंदोलन के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता था जनता की बढ़ती हुयी आर्थिक बदहाली भी इसका एक कारण थी। 1929 का विश्व-व्यापी आर्थिक संकट भारतीय जनता के लिए भारी मुसीबतें लेकर आया। किसानों की लगभग सारी फसल जमींदारों को लगान और सरकार को टैक्स चुकाने में ही जाने लगी। टैक्स देने में असमर्थ किसानों को शारीरिक यंत्रणायें भी दी गयीं। अतः भारतीय जनता के बढ़ते असंतोष की परिस्थिति खूनी क्रांति में हो सकती थी, जिसे टालना भी काँग्रेस अपना दायित्व समझती थी।

दिसम्बर, 1929 में काँग्रेस ने लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति को अपना लक्ष्य घोषित किया। यह लक्ष्य सारे देश में सविनय अवज्ञा, आंदोलन छेड़कर हासिल किया जाना था। आंदोलन के नेतृत्व और निर्देशन का उत्तरदायित्व गांधीजी को सौंपा गया था। 26 जनवरी, 1930 का दिन स्वाधीनता दिवस घोषित किया गया। उस दिन सारे भारत में सार्वजनिक सभाएँ हुयीं।

आंदोलन की शुरुआत नमक कानून के भंग होने से होनी थी। 12 मार्च, 1930 को गांधी जी साबरमती आश्रम (अहमदाबाद) से अपने 79 विशेषतः चुने हुए साथियों के साथ अरब सागर के तट पर स्थित डांडी गांव के लिए पैदल रवाना हो गये। 5 अप्रैल, 1930 को गांधीजी ने नमक बनाकर नमक कानून तोड़ा। 9 अप्रैल, को गांधी जी ने भारत की जनता को संबोधित किया। "हमारा रास्ता साफ है। हर गांव गैर कानूनी तरीके से नमक बनाये, औरतें शराबखानों, अफीम खानों और विदेशी कपड़ों की दुकानों के सामने धरना दें। विदेशी कपड़ों को जला देना चाहिये। हिन्दू छुआछूत की बात छोड़ दें। हिन्दु, मुस्लिम, सिख, ईसाई और पारसी सब मेल जोल से रहें। विद्यार्थी सरकारी स्कूल और कॉलेज छोड़ दें, सरकारी नौकर इस्तीफा दे दें और अपने को जनता की सेवा में लगा दें। तब हम शीघ्र ही देखेंगे कि पूर्ण स्वराज्य खुद ही हमारे दरवाजे पर दस्तक दे रहा है।" इस घोषणा के साथ राष्ट्रव्यापी सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ हो गया। सारे देश में नमक कानून तोड़ा गया, विशाल जलूस निकले, विदेशी मालों की दुकानों के सामने धरने दिये गये, चौराहों पर विदेशी कपड़ों की होली जलाई गयी तथा लाखों-करोड़ों



लोग संघर्ष में शामिल हो गये थे। किसानों ने अपने आप लगानबन्दी कितनी ही जगह मुख्यतः संयुक्त प्रांत (यू. पी.) में शुरू कर दी। भारतीय सैनिक सत्याग्रहियों पर गोली चलाने से इंकार करने लगे।

मई, 1930 में सरकार ने काँग्रेस को प्रतिबंधित कर दिया तथा गाँधी, नेहरू सहित अन्य नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। जेलों में बंद सत्याग्रहियों की संख्या 60,000 से ऊपर पहुँच गयी थी।

आंदोलन उग्र रूप धारण करता जा रहा था। चटगांव, पेशावर, शोलापुर, नागालैण्ड में सशस्त्र विद्रोह हुए। असल में कांग्रेस के आंदोलन के साथ क्रांतिकारियों ने अपनी गतिविधियाँ तेज कर दी थीं। आंदोलन गांधीजी द्वारा विहित अहिंसा की सीमाओं से बाहर निकलने लगा था। असल में न केवल ब्रिटिश सरकार बल्कि भारतीय पूँजीपति एवं सामंत वर्ग भी इस आंदोलन की समाप्ति के पक्ष में थे, जो मजदूरों और किसानों की स्वतंत्र गतिविधियों से डरते थे। इन वर्गों का काँग्रेस में वर्चस्व था। अतः समझौते की प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी। 26 जनवरी, 1931 को गाँधीजी सहित काँग्रेस के सदस्यों को रिहा कर दिया गया। 5 मार्च, 1931 को गांधी जी एवं गवर्नर जनरल लार्ड इरविन के मध्य एक समझौते पर हस्ताक्षर हुये। इसके अनुसार सरकार ने राजनीतिक बंदियों (कम्युनिस्टों एवं क्रांतिकारियों के अतिरिक्त) को रिहा करना स्वीकार किया तथा गाँधी जी ने दूसरे गोल मेज सम्मेलन में लंदन में भाग लेना भी स्वीकार कर लिया। इस प्रकार पुनः विशाल जन आंदोलन को वापस ले लिया गया। गाँधीजी क्रांतिकारियों की रिहाई की शर्त भी स्वीकार नहीं करा सके।

गाँधी इरविन समझौते ने भारतीय देशभक्तों को बड़ा निराश किया जैसे भी गाँधीजी के गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने का कोई परिणाम भी नहीं निकला। वे निराश होकर भारत लौटे तथा जनवरी, 1932 में पुनः सविनय अवज्ञा आंदोलन की घोषणा की जिसके जवाब में सरकार ने काँग्रेस नेताओं को पुनः जेल में ठूस दिया। आंदोलन को आगे बढ़ता न देख गाँधीजी ने 1932 में इसे भी बंद करने की घोषणा कर दी।

### **26.3.5 1935 के भारतीय शासन विधान का विरोध**

1935 में सारे देश में विरोध आंदोलन की प्रचंड लहर पुनः दौड़ गयी। इस बार विरोध का मुख्य मुद्दा ब्रिटिश संसद द्वारा पारित नया भारतीय शासन विधान था। भारत की जनता ने इसे भारत की गुलामी बढ़ाने वाला शासन विधान का नाम दिया। काँग्रेस, कम्युनिस्ट पार्टी और मजदूर, किसान तथा युवा संगठनों ने इस दासता पूर्ण विधान का सक्रिय विरोध किया। इससे भारत में संयुक्त साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे के स्थापना के लिए आधार तैयार हुआ।

1937 में प्रांतीय विधान सभाओं के चुनाव हुए। दासता पूर्ण शासन विधान का विरोध जारी रखते हुए और भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की माँग करते हुए काँग्रेस ने चुनावों में भाग लिया और 11 में से 7 प्रांतों में बहुमत प्राप्त किया। अन्य किसान, मजदूर व युवा संगठनों ने चुनाव का बहिष्कार किया एवं अपना विरोध आंदोलन जारी रखा।

1922-1937 के मध्य भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में काफी प्रगति हुयी। इस बीच काँग्रेस के अतिरिक्त अनेक क्रांतिकारी एवं मेहनतकशों के संगठनों का जन्म हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन में जनता की भागीदारी बढ़ी तथा स्वतंत्रता सेनानियों की माँग पूर्ण स्वराज में बदल गयी।

## 26.4 1937-1947 भारत का राष्ट्रीय आंदोलन

1937-1947 के मध्य भारत का राष्ट्रीय आंदोलन अंग्रेजी दासता से मुक्ति के निर्णायक दौर में पहुँच गया। इस काल में स्वतंत्रता संग्राम का विस्तार सम्पूर्ण भारत में हो गया था। भारत के एक तिहाई भाग में देशी रियासतों का वर्चस्व था। जहाँ जन आंदोलन अविकसित अवस्था में थे। 1938 के बाद देशी रियासतों में जन आंदोलनों का विस्तार एक महत्वपूर्ण बात थी। द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में एक भारी उभार आया। 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन अंग्रेजी साम्राज्य पर एक भारी प्रहार साबित हुआ। 1947 में भारत की आजादी तक अनेक जन आंदोलन एवं राजनीतिक प्रवृत्तियाँ भारत के मंच पर दृष्टिगोचर हुयी।

### 26.4.1 देशी रियासतों के जनसंघर्ष

देशी रियासतों में अलग-अलग जन आंदोलन 1920 के पहले से चले आ रहे थे। किन्तु इस ओर काँग्रेस की विमुखता एवं रियासतों के राजनीतिक स्वरूप के कारण आगे के कारण आगे नहीं बढ़ पा रहे थे। गांधीजी देशी रियासतों में, आंदोलन के पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार ये रियासतें स्वतंत्र भारत में भी रह सकती थी। जबकि वास्तविकता यह थी कि इन राज्यों का अस्तित्व अंग्रेज शासकों ने अपने साम्राज्यवादी हितों के पूर्ति हेतु बनाये रखा था। इनके शासक यह भलीभाँति जानते थे कि वे अंग्रेजों की कृपा पर जीवित हैं। अतः अंग्रेजों, के कृपा पात्र बने रहने से ही उनका लाभ था।

देशी रियासतों की जनता की अंग्रेजी भारत के भू-भागों की जनता की तुलना में, अधिक बदहली थी। देशी राज्यों की जनता तिहरे शोषण का शिकार थी। अंग्रेजी सत्ता, देशी महाराजा एवं जागीरदार के शासन का तिहरा भार ये लोग ढो रहे थे। राष्ट्रवादी उभार के प्रभाव में इन राज्यों की जनता समय-समय पर आंदोलित हुयी, किन्तु राष्ट्रीय स्तर के संगठनों के समर्थन के अभाव में असफलता ही हाथ लगी।

1938 में काँग्रेस की नीति में परिवर्तन आया। इसी वर्ष अपने हरीरपुरा अधिवेशन में देशी राज्यों के जन-आंदोलनों को काँग्रेस ने अपने आंदोलन के अंग के रूप में स्वीकार कर लिया। अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा मण्डल को प्रभावी संगठन बनाया गया तथा देशी राज्यों के नेताओं को अपने-अपने राज्य में प्रजामण्डल स्थापित करने की सलाह दी। अतः 1938 के उपरांत प्रजामण्डल आंदोलनों के माध्यम से ही देशी राज्यों के जन आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में शामिल हो गये। इससे काँग्रेस के प्रभाव क्षेत्र का विस्तार हुआ तथा राष्ट्रीय आंदोलन अधिक शक्तिशाली हो सका।

### 26.4.2 साम्प्रदायिकता का विकास, पाकिस्तान की माँग

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के निर्णायक दौर में साम्प्रदायिकता भी अपने निर्णायक दौर में पहुँच गयी एवं इसने पृथक्तावाद का रास्ता अपना लिया। मुस्लिम लीग ने अपने आपको मुसलमानों का रहनुमा बना लिया था। 32 मार्च, 1940 को मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन में लाहौर प्रस्ताव पास किया जिसे पाकिस्तान प्रस्ताव के नाम से जाना जाता है। 1940-46 के मध्य मुस्लिम लीग अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति में लगी रही तथा 1947 में पृथक राज्य पाकिस्तान को प्राप्त करने में सफल रही।

### 26.4.3 भारत छोड़ो आंदोलन, 1942

1937-47 के मध्य राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान का एक प्रभावी आंदोलन था "भारत छोड़ो आंदोलन"। काँग्रेस की समझ इस समय काफी साफ थी। 1939 में द्वितीय विश्व-युद्ध आरम्भ हो चुका था। 1939 में काँग्रेस की कार्यकारिणी ने यह घोषणा की कि वह युद्ध में इंग्लैंड का समर्थन केवल तभी करेगी जबकि वह भारत को पूर्ण स्वराज देने पर सहमत हो। देशभर में युद्ध विरोधी प्रदर्शन और हड़तालें होने लगीं। 1942 के आरम्भ में जापान को पूर्वी एशिया में भारी सफलता मिली एवं जापान की फौजें 7 मार्च, 1942 को रंगून पर अधिकार करने में सफल रही तथा भारत पर आक्रमण के लक्षण दिखने लगे थे। अतः अंग्रेज काँग्रेस का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास करने लगे।

23 मार्च, 1942 को क्रिप्स मिशन भारत पहुँचा जिसका उद्देश्य काँग्रेस का समर्थन प्राप्त करना था। इस मिशन ने युद्ध समाप्ति के बाद भारत को यथाशीघ्र डोमीनियम (अंग्रेजों में मातहत स्वायत्तता) घोषित करने का वायदा किया। किन्तु काँग्रेस तुरन्त ही उत्तरदायी राष्ट्रीय सरकार बनाये जाने की माँग कर रही थी। गाँधीजी ने स्पष्ट घोषणा की कि यदि अंग्रेज भारत से अपना नियंत्रण हटा लें तो भारतीय जनता विदेशी आक्रांताओं का हर तरह से मुकाबला करने के लिए तैयार है। क्रिप्स मिशन "डोमीनियन स्टेटस" से आगे कुछ देने के लिए सहमत नहीं था। अतः यह मिशन अपने कार्य में असफल रहा।

14 जुलाई, 1942 को काँग्रेस ने प्रस्ताव पास किया कि जब तक अंग्रेज अपना शासन समाप्त नहीं करते तब तक अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन चलता रहेगा। 8 अगस्त, 1942 को बम्बई में काँग्रेस वर्किंग कमेटी ने आंदोलन का स्वरूप अहिंसात्मक सत्याग्रह के रूप में चलाया जाना था। ब्रिटिश सरकार ने दमन की नीति अपनाते हुए 9 अगस्त को सूर्योदय से पूर्व गाँधीजी सहित काँग्रेस कार्य समिति के सभी नेताओं को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। एक सप्ताह के भीतर सम्पूर्ण देश के प्रमुख कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया था।

जनता नेतृत्वहीन हो गयी थी। नेताओं की गिरफ्तारी के खिलाफ स्वस्फूर्त प्रदर्शन और जुलूस निकाले। जनता ने स्वयं अपना रास्ता तय किया। विद्यार्थी, किसान, मजदूर एवं निम्न मध्यमवर्ग आंदोलन में कूद पड़े एवं आंदोलन ने क्रांति का रूप धारण कर लिया। अंग्रेजी प्रशासन को अस्त-व्यस्त करने के लिए रेल लाईन, पुल एवं सड़कें, तोड़ दी गयीं। टेलीफोन के खम्भे उखाड़ दिये गये, सरकारी इमारतों में, तोड़-फोड़ एवं आगजनी की गयी। पुलिस एवं फौज

के साथ सशस्त्र मुकाबला किया गया। यह आंदोलन अधिक समय तक नहीं चल सकता था। इस आंदोलन को अंग्रेजी सरकार ने बर्बरतापूर्वक कुचल दिया।

आंदोलन के कुचल जाने के उपरांत भी यह एक सफल आंदोलन कहा जा सकता है। इसने एक बार तो भारत में अंग्रेजी राज को अप्रभावी कर दिया था। इस आंदोलन ने भारत में अंग्रेजों की शक्ति का एहसास करा दिया था। यह आंदोलन अंग्रेजी शासन पर एक भारी प्रहार था। जिसने बता दिया कि भारतवासी अधिक समय तक दासता को सहने वाले नहीं हैं।

#### 26.4.4 आजाद हिन्द फौज

सुभाष चन्द्र बोस काँग्रेस के अतिवादी नेता थे। उन्होंने सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से भारत को स्वतंत्र कराने की योजना बनायी। उन्होंने इंग्लैण्ड विरोधी खेमे के देशों जर्मनी एवं जापान के साथ सहयोग स्थापित कर भारत से अंग्रेजी शासन की समाप्ति के प्रयास किये। विधिवत रूप से 1 सितम्बर 1942 को आजाद हिन्द फौज की स्थापना हुयी। 21 अक्टूबर, 1943 को सुभाष बोस ने सिंगापुर में अस्थाई भारत सरकार की स्थापना की। फरवरी, 1944 से जून 1944 तक आजाद हिंद फौज ने बड़ी सफलतापूर्वक जापानी सेना के साथ मिलकर भारत की सीमा पर अंग्रेजों के साथ सफल युद्ध किया। इसका आधार-क्षेत्र बर्मा को बना लिया था। किन्तु जापान की शक्ति क्षीण होने लगी थी एवं जून, 1944 में जापान को बर्मा से अपनी फौजें हटाने के लिए मजबूर होना पड़ा। इसी बीच आजाद हिन्द फौज की शक्ति भी कम हो गयी तथा इसके अधिकांश सैनिकों एवं कामगरों को 1945 में अंग्रेजों ने बंदी बना लिया। सुभाष बोस की हवाई दुर्घटना में 18 अगस्त, 1945 को मृत्यु हो गयी। आजाद हिन्द फौज ने सशस्त्र संघर्ष द्वारा अंग्रेजी शासन को खुली चुनौती दी। चाहे इसे असफलता हाथ लगी। किन्तु भारत की आजादी की मशाल जलाये रखने में इसका योगदान रहा।

#### 26.4.5 भारत की आजादी के सहायक तत्व एवं आजादी

1945 में द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के उपरांत अंग्रेजों की विश्व शक्ति के रूप में स्थिति समाप्त होने लगी थी। युद्धकाल के भारत के जन आंदोलनों, सैनिक विद्रोहों एवं स्वतंत्रता संग्राम के स्वरूप ने अंग्रेजों को सावधान कर दिया था कि अब उनके शासन के दिन लद चुके हैं। अंग्रेज नयी रियायतें देने का नाटक रच रहे थे। इस दिशा में 14 मई, 1945 को गवर्नर जनरल बैवेल ने शिमला में एक सम्मेलन बुलाया जिसमें काँग्रेस, मुस्लिम लीग एवं अन्य धार्मिक समुदायों के प्रतिनिधि शामिल हुए। गवर्नर जनरल ने सरकार के गठन का आधार धार्मिक साम्प्रदायिक रखा था। काँग्रेस को हिन्दू संगठन का दर्जा देने की बात की जिसे काँग्रेस ने अस्वीकार कर दिया।

सितम्बर 1945 में आजाद हिन्द फौज के 20,000 कैदियों पर मुकदमा शुरू हुआ। काँग्रेस ने इसके विरोध में आंदोलन शुरू कर इनके रिहाई की माँग की। नवम्बर, 1945 में फॉरवर्ड ब्लाक एवं कम्युनिस्टों की ओर से जन-आंदोलन आरम्भ कर दिये गये थे। 2 जनवरी, 1946 को ब्रिटिश सरकार ने कैबिनेट मिशन भारतीय नेताओं से बात-चीत करने भारत भेजा। किन्तु कोई निर्णय नहीं हो सका।

11 से 13 फरवरी, 1946 को, पुनः कलकत्ता में आजाद हिन्द फौज के अब्दुल रशीद को दी गयी 7 वर्ष की कठोर कारावास की सजा के विरोध में आंदोलन आरम्भ हो गया। इसने क्रांति का रूप धारण कर लिया। इसी बीच 18-23 फरवरी, 1946 में नौसेना ने बम्बई में विद्रोह कर दिया 1946 में सम्पूर्ण देश में किसानों के सामंत विरोधी आंदोलनों ने विद्रोहों का रूप धारण कर लिया था। आंध्रप्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र में किसानों ने सशस्त्र संघर्ष आरम्भ कर दिया। यही स्थिति बंगाल के तेभागा प्रांत में हुई।

भारत में बढ़ते हुए जन संघर्षों से मजबूर होकर 20 फरवरी, 1947 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने घोषणा की कि जून 1948 तक भारतीयों को स्वतंत्र सत्ता सौंप दी जायेगी। इसी समय वावेल के स्थान पर माउंट बैटन को भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया जिसे भारत को सत्ता सौंपने की योजना को कार्यान्वित करना था। जून, 1947 में, ब्रिटिश सरकार ने भारत को दो राज्यों भारत एवं पाकिस्तान में बाँटने का फैसला किया। इसके अनुसार 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान एवं 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्र घोषित कर ब्रिटिश सरकार ने दोनों स्वतंत्र राज्यों को सत्ता सौंप दी। इस प्रकार भारत एक स्वतंत्र देश के रूप में पैदा हुआ। 26 जनवरी, 1950 को भारत का नया संविधान लागू हुआ।

## 26.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

- (1) 1920 असहयोग आंदोलन के कारण एवं सहायक परिस्थितियाँ क्या थी। (50 शब्द)
- (2) असहयोग आंदोलन की प्रगति का उल्लेख करते हुए भारत के राष्ट्रीय एवं स्वतंत्रता आंदोलन में इसका योगदान अंकित कीजिये। (500 शब्द)
- (3) (3) 1922-1929 के मध्य भारत के राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति का विवरण दीजिये। (500 शब्द)
- (4) सविनय अवज्ञा आंदोलन के कारण, प्रगति एवं स्वरूप का विवरण देते हुए राष्ट्रीय आंदोलन में इसकी भूमिका का विश्लेषण कीजिये। (500 शब्द)
- (5) 1938-1942 के मध्य राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति का विश्लेषण कीजिये (500 शब्द)
- (6) 1942-47 तक राष्ट्रीय आंदोलन की विभिन्न घटनाओं का वर्णन करते हुए भारत की स्वतंत्रता के सहायक तत्वों की व्याख्या कीजिये। (500 शब्द)

## 26.6 ग्रन्थ सूची

- |                   |   |  |
|-------------------|---|--|
| (i) Sumit Sarkar  | : | Modern India(1885-1947)  |
| (ii) R.P. Dutt    | : | India To-day (Also in Hindi)                                     |
| (iii) Tara Chand  | : | History of Freedom Movement in India in iv Vols. (also in Hindi) |
| (iv) अयोध्या सिंह | : | भारत का मुक्ति संग्राम   |
| (v) अयोध्या सिंह  | : | साम्राज्यवाद का उदय एवं अन्त                                     |

- (vi) रामविलास शर्मा : भारत में अंग्रेजी राज एवं मार्क्सवाद (दो भागों में)
- (vii) ए. आर. देसाई : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि (मूलतः अंग्रेजी में)

## इकाई- 27

### ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल

#### इकाई की रूपरेखा

- 27.0 उद्देश्य
- 27.1 प्रस्तावना
- 27.2 राष्ट्रमण्डल का अर्थ एवं स्वरूप
- 27.3 राष्ट्रमण्डल का संगठन एवं संस्थाएँ
- 27.4 राष्ट्रमण्डल के उद्देश्य
- 27.5 राष्ट्रमण्डल का ऐतिहासिक विकास
- 27.7 प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् राष्ट्रमण्डल का विकास
- 27.8 राष्ट्रमण्डल की विशेषताएं
- 27.9 सारांश
- 27.10 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 27.11 संदर्भ ग्रन्थ सामग्री

#### 27.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे

- राष्ट्रमण्डल का अर्थ एवं स्वरूप,
- राष्ट्रमण्डल का संगठन, जिनमें मुकुट, राष्ट्रमण्डलीय प्रधानमंत्री सम्मेलन, राष्ट्रमण्डलीय सम्बन्ध कार्यालय एवं राष्ट्रमण्डल सचिवालय है। राष्ट्रमण्डल की संस्थाओं में राष्ट्रमण्डलीय संघ, राष्ट्रमण्डलीय कृषि ब्यूरो एवं राष्ट्रमण्डलीय आर्थिक सलाहकार परिषद आदि का विवेचन किया गया है।
- राष्ट्रमण्डल के उद्देश्य जिनमें प्रजातन्त्र के आदर्श और मौलिक मानवीय अधिकारों की प्राप्ति, बाहरी आक्रमणों के विरुद्ध सामान्य सुरक्षा, आर्थिक कल्याण एवं सामान्य हित है।
- राष्ट्रमण्डल के ऐतिहासिक विकास का विवेचन किया गया है,
- सम्मेलन में भारत के प्रवेश का उल्लेख किया गया है,
- इसमें प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् 1945 तक राष्ट्रमण्डल के विकास को दर्शाया गया है,
- राष्ट्रमण्डल की विभिन्न विशेषताओं का विवेचन, आदि।

#### 27.1 प्रस्तावना

इस इकाई में ब्रिटिशमण्डल का अर्थ एवं उसके स्वरूप से परिचय कराया जायेगा। राष्ट्रमण्डल के प्रमुख अंगों में मुकुट, राष्ट्रमण्डलीय प्रधानमंत्री सम्मेलन, राष्ट्रमण्डलीय सम्बन्ध कार्यालय एवं राष्ट्रमण्डल सचिवालय है। इसकी प्रमुख संस्थाओं में राष्ट्रमण्डलीय संसदीय संघ,

राष्ट्रमण्डलीय कृषि ब्यूरो और राष्ट्रमण्डलीय आर्थिक सलाहकार परिषद् विशेष रूप से उल्लेखनीय है इसके विविध उद्देश्यों में प्रजातन्त्र के आदर्श और मौलिक मानवीय अधिकारों की प्राप्ति, बाहरी आक्रमणों के विरुद्ध सामान्य सुरक्षा एवं सदस्य राष्ट्रों का आर्थिक कल्याण एवं सामान्य हितों की ओर अग्रसर होना है। इसके अतिरिक्त इस इकाई में राष्ट्रमण्डल का ऐतिहासिक विकास, सम्मेलन में भारत का प्रवेश, द्वितीय विश्वयुद्ध तक राष्ट्रमण्डल का विकास आदि राष्ट्रमण्डल की विविध विशेषताओं का विशद् रूप से विवेचन किया गया है।

## 27.2 राष्ट्रमण्डल का अर्थ एवं स्वरूप

राष्ट्रमण्डल (Commonwealth of Nations) का पुराना नाम "ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल" (British Commonwealth of Nations) है। राष्ट्रमण्डल उन देशों का संगठन है जो कभी अंग्रेजों के अधीन रहे थे और जिन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ब्रिटेन से बराबरी का सम्बन्ध स्थापित किये। अतः "अंग्रेजी साम्राज्य", "अंग्रेजी राष्ट्रमण्डल" तथा "राष्ट्रमण्डल" एक ही संस्था के नाम हैं जो आवश्यकतानुसार परिवर्तन के द्योतक हैं यह एक विचित्र प्रकार का संगठन है जिसे न तो प्रादेशिक सन्धि अथवा संगठन कहा जा सकता है और न ही एक राज्य की संज्ञा दी जा सकती है। यह न राष्ट्र है, न मैत्री-सन्धि और न ही एक संघ।

राष्ट्रमण्डल एक प्रादेशिक संगठन अथवा सन्धि इसलिये नहीं है क्योंकि यह अत्यधिक बिखरा हुआ है और इसकी चालक शक्ति कभी-कभी व्यावहारिक कम लेकिन भावनात्मक अधिक होती है। जो सूत्र इसके सदस्यों को आपस में बांधते हैं, वे अत्यधिक अदृढ़ तथा अनौपचारिक हैं पर अत्यधिक गहरी जड़ों वाले और परम्परागत हैं।

राष्ट्रमण्डल के बारे में 10 जनवरी, 1951 को अपने एक भाषण में कनाडा के तत्कालीन प्रधानमन्त्री लॉरेन ने कहा था, "राष्ट्रमण्डल को एक राजनीतिक इकाई नहीं माना जा सकता है। यह एक संधि व्यवस्था नहीं है। इसकी कोई सामान्य नीति नहीं है। विश्व राजनीति की समस्याओं के बारे में राष्ट्रमण्डल के सदस्य राष्ट्र पृथक्-पृथक् निर्णय करते हैं और उसका कोई भी सदस्य राष्ट्र स्वतन्त्र निर्णय के अपने अधिकार का परित्याग करने को तैयार नहीं है।" लॉरेन से मिलते जुलते विचार संयुक्त राज्य अमेरिका में तत्कालीन भारतीय राजदूत श्री जी. एल. मेहता ने 7 अप्रैल, 1954 को न्यूयार्क में एक भाषण में अभिव्यक्त किए, "यह सर्वविदित है कि राष्ट्रमण्डल कोई वैधानिक संगठन नहीं है वह कोई राज्योपरि संस्था भी नहीं है। वह एक ऐसा समुदाय है जिसके भीतर देशों का एक समूह अनुभव और कौशल के एक भण्डार में भाग लेता है। ऐसा नहीं है कि ये देश एक दूसरे के साथ सहमत ही हों तथा साथ-साथ अपना मत दें, अनेक अवसरों पर उन्होंने संयुक्त राष्ट्रसंघ में मतभेदों का परिचय दिया है। स्वतन्त्र और प्रभुता सम्पन्न राष्ट्रों के स्वतन्त्र समुदाय से सहज ही यह आशा की जा सकती है। उनमें से कोई भी देश इस बात के लिये तैयार नहीं है कि वह एक शिविर का अनुयायी या पिछलग्गू मात्र रह जाए। राष्ट्रमण्डल को एक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोग का रूप देने वाले दो तत्व हैं- राष्ट्रों के बीच पारस्परिक आदर की भवना और समानता।" ब्रिटेन के भूतपूर्व विदेशमन्त्री ऑथर हैण्डरसन के शब्दों में, "राष्ट्रमण्डल किसी कठोर एवं अव्यावहारिक कानूनी सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। यह एक प्रकार के आध्यात्मिक संगठन का प्रतीक है, इसका तत्व कुछ स्वतन्त्र राज्यों



का ऐसा संगठन है जो पारस्परिक विश्वास, निष्ठा तथा समान आदर्शों के द्वारा आपस में मित्रता के सूत्र द्वारा बंधे हुए हैं। यह ऐसे राष्ट्रों का एक समुदाय है जो यह जानते हैं कि किस प्रकार शान्ति एवं मैत्री के वातावरण में रहकर अपने तथा मानव समाज के हित व कल्याण के लिए सहयोग किया जा सकता है और जिनकी जीवन-पद्धति अनिवार्यतः विधि शासन एवं मानव के मूल अधिकारों के प्रति आदर की भावनाओं पर आधारित है।" इसी प्रकार जे. डी. बी. मिलर का कहना है कि "राष्ट्रमण्डल एक आपसी सहूलियत का समुदाय है" जार्ज वाटसन ने इसे "भूतपूर्व साम्राज्य का अवशेष अथवा समुदाय" कहा है। राष्ट्रमण्डल के सम्बन्ध में लन्दन के एक समाचार पत्र इकोनोमिस्ट (Economist) ने लिखा है, - "ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल राष्ट्रों के अव्यवस्थित संग्रह से अधिक कुछ नहीं है। इसमें विश्व के मामलों में परस्पर संगति रखने की कोई कार्य-पद्धति नहीं है और न कोई सामान्य जिम्मेदारियाँ हैं और इनमें से कई राष्ट्र एक दूसरे से झगड़ा भी करते रहते हैं। ये राष्ट्र मिलकर एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति उपस्थित करते हैं जिसे "राष्ट्रमण्डल" कहना इस शब्द का उपहास करना होगा। "

परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी अर्थात् एक राष्ट्र या मैत्री-सन्धि या संघ अथवा प्रादेशिक संगठन आदि के समान कोई भी सुदृढ़ आकार न रखते हुए भी, यह स्वीकार करना होगा कि राष्ट्रमण्डल एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय मंच है जिसके निर्णयों, प्रस्तावों और निकट सहयोग का विश्व की समग्र राजनीति पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता है। राष्ट्रमण्डल अन्तर्राष्ट्रीय जगत् की एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली यथार्थता है। यह एक नाममात्र नहीं है प्रत्युत स्वेच्छापूर्ण सहयोग का प्रतीक है। यह एक ऐसा मंच है जिस पर विश्व के कुछ देश समय-समय पर एकत्रित होते रहते हैं, एक दूसरे के विचारों को जानने एवं जमाने की चेष्टा करते हैं और जिन क्षेत्रों में निर्विवाद सहमति हो उनमें पारस्परिक सहयोग के लिये कार्यक्रम बनाते तथा उसे क्रियान्वित करते हैं। इस प्रकार यह कहना चाहिए कि राष्ट्रमण्डल के सदस्य कुछ समान आदर्शों में विश्वास करते हैं और संसदीय प्रजातन्त्र की समान विरासत के भागीदार हैं।

### 27.3 राष्ट्रमण्डल का संगठन

राष्ट्रमण्डल के चार प्रमुख अंग हैं-

- (i) ब्रिटिश मुकुट (British Crown)
- (ii) राष्ट्रमण्डलीय प्रधानमन्त्री सम्मेलन (Commonwealth Prime Ministers Conference)
- (iii) राष्ट्रमण्डलीय सम्बन्ध कार्यालय (Commonwealth Relation Office)
- (iv) राष्ट्रमण्डल सचिवालय।

ब्रिटिश मुकुट राष्ट्रमण्डल का प्रमुख अंग है जिसे सभी सदस्य राज्य राष्ट्रमण्डल के प्रधान के रूप में स्वीकार करते हैं। मुकुट अथवा सम्राट या सम्राज्ञी को केवल प्रतीक रूप में राष्ट्रमण्डल का अध्यक्ष माना जाता है, अन्यथा उसे सदस्य राज्यों के सम्बन्ध में कोई वैधानिक शक्ति प्राप्त नहीं है।

राष्ट्रमण्डलीय प्रधानमन्त्री सम्मेलन राष्ट्रमण्डल का सबसे अधिक प्रभावशाली अंग है। इसका अधिवेशन समय-समय पर लन्दन में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में होता है। इन सम्मेलनों में राजनीतिक और आर्थिक प्रश्न चर्चा के मुख्य विषय रहे हैं। यह सम्मेलन अपने समय के ज्वलन्त अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों एवं समस्याओं पर भी विचार-विमर्श करता है।

राष्ट्रमण्डलीय सम्बन्ध कार्यालय, जो राष्ट्रमण्डल का तीसरा अंग है, लन्दन में है और विभिन्न राष्ट्रमण्डलीय देशों में निरन्तर सम्पर्क स्थापित किए जाने का प्रयास करता है।

1965 में होने वाले राष्ट्रमण्डलीय प्रधानमन्त्री सम्मेलन में लिए गए एक निर्णय के फलस्वरूप ब्रिटेन में राष्ट्रमण्डल के चौथे अंग "राष्ट्रमण्डलीय सचिवालय" की स्थापना की गई। राष्ट्रमण्डल सचिवालय का विधिवत् रूप से गठन किया गया और 17 अगस्त, 1968 को कनाडा के अर्नोल्ड स्मिथ ने इस सचिवालय में महासचिव के रूप में कार्यभार सम्भाल लिया।

#### **राष्ट्रमण्डल की संस्थाएँ**

राष्ट्रमण्डलीय देशों के समय-समय पर विभिन्न प्रकार के सम्मेलन तो होते ही रहते हैं, इनके अतिरिक्त सदस्य राष्ट्रों में पारस्परिक सहयोग स्थापित करने के लिए, इसके अन्तर्गत कुछ स्थायी संस्थाएँ भी कार्य कर रही हैं। इनमें से इन संस्थाओं के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं-

- (i) राष्ट्रमण्डलीय संसदीय संघ  
इसके तत्वाधान में राष्ट्रमण्डल के सदस्य राष्ट्रों के संसद सदस्यों के सम्मेलन होते हैं।
- (ii) राष्ट्रमण्डलीय कृषि ब्यूरो  
इसके द्वारा सदस्य राष्ट्रों को उन्नत कृषि-सम्बन्धी सूचनाएँ एवं परामर्श दिया जाता है।
- (iii) राष्ट्रमण्डलीय आर्थिक सलाहकार परिषद्  
इसके द्वारा सदस्य राष्ट्रों को आर्थिक उन्नति सम्बन्धी विषयों पर महत्वपूर्ण सलाह उपलब्ध होती है।

#### **27.4 राष्ट्रमण्डल के उद्देश्य**

राष्ट्रमण्डल के स्वरूप एवं उसकी प्रकृति से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रमण्डल उन बिखरी हुई सरकारों का एक ऐसा समूह है जो ब्रिटिश मुकुट को स्वेच्छापूर्ण सहयोग के प्रतीक के रूप में राष्ट्रमण्डल का प्रधान अथवा अध्यक्ष मानते हैं वे कुछ समान आदर्शों में विश्वास करते हैं और इन आदर्शों को प्राप्त करने तथा पारस्परिक सहयोग के लिए नियमित विचार-विमर्श करने के लिए तैयार हैं। राष्ट्रमण्डल के सदस्य राज्यों के बीच परस्पर न कोई एकता है और न अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य करने हेतु इसके कोई लक्ष्य या ध्येय है। फिर भी राष्ट्रमण्डल के सदस्य राज्यों में, कुछ विषयों पर प्रायः सहमति पाई जाती है, जिनके द्वारा इसके निम्नलिखित उद्देश्य प्रकट होते हैं

I. राष्ट्रमण्डल के प्रायः सभी सदस्य राज्य प्रजातन्त्र के आदर्श और मौलिक मानवीय, अधिकारों की प्राप्ति का उद्देश्य स्वीकार करते हैं।

II. बाहरी आक्रमणों के विरुद्ध सामान्य सुरक्षा (Common Defence against external threats) भी इसका एक महत्वपूर्ण उद्देश्य अथवा आदर्श माना जा सकता है, यद्यपि

इसके बारे में इसके सम्प्रभु सदस्य राष्ट्रों के अपने पृथक विचार और व्यवहार है। आशा की जाती है कि सदस्य राष्ट्र किसी भी प्रकार की गलतफहमी उत्पन्न न करते हुए परस्पर सहयोग और सौहार्द की दिशा में प्रयत्न जारी रखेंगे।

III. सदस्य राष्ट्रों का एक यह भी उद्देश्य है कि राष्ट्रमण्डल परिवार का होने के कारण वे सभी आर्थिक कल्याण एवं सामान्य हितों के लिये अग्रसर होंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये राष्ट्रमण्डल-परिवार के सदस्य विभिन्न प्रकार के सम्मेलन आयोजित करते हैं और सामान्य हितों की नीतियों का निर्माण करने का प्रयास करते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति से प्रेरित होकर सदस्य राष्ट्रों के प्रधानमन्त्री, वित्तमन्त्री, शिक्षामन्त्री, व्यापार मंत्री आदि समय-समय पर मिलते रहते हैं। ब्रिटेन द्वारा यूरोपीय साझा बाजार में सम्मिलित होने की इच्छा पर सभी राष्ट्रों से मंत्रणा की गई थी ताकि राष्ट्रमण्डल के सदस्य राज्यों, के सामान्य हितों की रक्षा की जा सके। इसी प्रकार कोलम्बो योजना राष्ट्रमण्डल के सदस्य राष्ट्रों के आर्थिक कल्याण की एक महत्वपूर्ण योजना सफल रूप से कार्यान्वित की जा चुकी है।

इस प्रकार राष्ट्रमण्डल का कार्यक्षेत्र आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक और स्वास्थ्य जैसे अनेक क्षेत्रों में फैला हुआ है। राष्ट्रमण्डल में विकसित और विकासोन्मुख दोनों प्रकार के राष्ट्र हैं जिनमें परस्पर आर्थिक सहयोग, ऋण आदि के रूप में चल रहा है। शिक्षा का विकास भी राष्ट्रमण्डल की अपनी एक अलग विशेषता है इसी प्रकार स्वास्थ्य और विज्ञान की प्रगति के लिये भी राष्ट्रमण्डल एक निश्चित योजना के साथ कार्य कर रहा है इन सबके बावजूद राष्ट्रमण्डल का राजनीतिक पक्ष ही अधिक प्रकट हुआ है राष्ट्रमण्डल सदस्य देशों के आपसी झगड़ों में सम्बन्धित देशों की सहमति के बिना, हस्तक्षेप नहीं करना है लेकिन कभी-कभी उसे सदस्य राज्यों के झगड़ों में उलझना पड़ता है।

यह सत्य है कि राष्ट्रमण्डल अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में पूर्णतया सफल नहीं रहा है फिर भी संयुक्त राष्ट्र संघ के बाद यह एक ऐसा सबसे बड़ा मंच है जिस पर उसके सदस्य देशों को आपसी मतभेद के बावजूद एकत्रित होकर बैठने और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श करने का अवसर मिलता है। राष्ट्रमंडलीय सम्मेलनों का उद्देश्य कोई एक सामान्य नीति तैयार करना अथवा संयुक्त कार्यवाही की योजना बनाना नहीं है, बल्कि इस तथ्य को अभिव्यक्त करना है कि सभी राष्ट्रमंडलीय सरकारें किसी एक प्रश्न विशेष पर समान दृष्टि से सोचती हैं और वे प्रत्येक सदस्य राष्ट्र की नीतियों में निहित सिद्धान्तों और उद्देश्यों का सम्मान करती हैं। संक्षेप में राष्ट्रमंडलीय सम्मेलनों का उद्देश्य पारस्परिक समझदारी के उच्चतम मापदण्ड तैयार करना है न कि समझौते करवाना।

## 27.5 राष्ट्रमण्डल का ऐतिहासिक विकास

ब्रिटिश साम्राज्य, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल और राष्ट्रमण्डल एक ही संस्था के प्रतीक हैं। ये तीनों शब्द समानार्थक हैं और विकल्पानुसार प्रयोग में लाए जाते रहे हैं किन्तु आजकल "राष्ट्रमण्डल" शब्द का ही अधिक प्रयोग किया जाता है। वर्तमान राष्ट्रमण्डल के बीज 16 वीं शताब्दी तक में खोजे जा सकते हैं। विश्व इतिहास में एक ऐसा समय रहा था जब विश्व का

ऐसा कोई महाद्वीप या गोलाद्ध न था, जहाँ पर ब्रिटिश सत्ता फैली हुई न हो। आरम्भ से ही ब्रिटेन के आधीन दो प्रकार के प्रदेश रहें थे-

(i) वें प्रदेश अथवा उपनिवेश जिनमें ब्रिटिश नागरिक तथा अन्य यूरोपियन जाकर बस गए थे और जो भाषा, धर्म, संस्कृति, नस्ल तथा अन्य सभी प्रकार से ब्रिटेन के साथ सम्बद्ध थे। इनमें कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और आयरलैण्ड आदि देश हैं। दक्षिणी अफ्रीका संघ के गोरे शासक भी ब्रिटेन के साथ इसी प्रकार की एकात्मकता का अनुभव करते थे।

(ii) वे पराधीन राष्ट्र जो ब्रिटेन के साथ न तो किसी प्रकार की एकता का अनुभव ही करते थे और न ही ब्रिटेन के साथ भाषा, धर्म, संस्कृति आदि से सम्बद्ध थे। ये राष्ट्र ब्रिटेन की अधीनता से स्वतन्त्र होने की इच्छा रखते थे। इन राष्ट्रों में भारत, श्रीलंका, बर्मा, मलाया, सिंगापुर, उत्तरी बोर्नियो, सारावाक, नाइजीरिया, यूगाण्डा, टांगानिका, घाना, केन्या, रोडेशिया, न्यासालैण्ड, साइप्रस, अदन, माल्टा, सियरा-लियोन आदि थे।

राष्ट्रमण्डल के उद्भव का इतिहास लॉर्ड डरहम (Lord Durham) के इस प्रतिवेदन में खोजा जा सकता है, जो उन्होंने 1839 में कनाडा के उपनिवेशों में फैले असन्तोष के कारणों के बारे में ब्रिटिश सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया था। इस प्रतिवेदन में उन्होंने कहा था कि भविष्य में गवर्नर को ऐसे मन्त्री नियुक्त करने चाहिये जिन्हें स्थानीय जनता का समर्थन एवं विश्वास प्राप्त हो अन्यथा ये उपनिवेश भी अमेरिकन उपनिवेशों का मार्ग अपना कर स्वतन्त्र हो सकते हैं। यह उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन के अमेरिकन उपनिवेशों ने 18 वीं शताब्दी के अन्त में संगठित रूप से ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम छेड़ दिया था जिसके परिणामस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना हुई। लॉर्ड डरहम की सिफारिशों को ब्रिटिश सरकार ने महत्व दिया और 1847 में कनाडा में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गयी। तत्पश्चात् आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और दक्षिणी अफ्रीका में भी इस व्यवस्था को, लागू किया गया। इसी प्रकार इन स्वशासी उपनिवेशों (Self-governing colonies) की स्थापना हुई। स्वशासी उपनिवेशों की स्थापना के बाद एक ऐसे माध्यम की आवश्यकता का अनुभव किया गया जो ब्रिटिश सरकार के इनके सम्बन्धों की देखभाल कर सके।

राष्ट्रमण्डल का प्रारम्भ 1887 में महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के अवसर पर ब्रिटिश उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का अनौपचारिक सम्मेलन लन्दन में हुआ। कालांतर में उसी बैठक ने "स्वतन्त्र राष्ट्रों की साझेदारी" का वर्तमान स्वरूप धारण कर लिया। यह औपनिवेशिक सम्मेलन (Colonial conference) कहलाया। 1887 के समान ही सात वर्ष के बाद एक दूसरा अनौपचारिक सम्मेलन ओटावा में हुआ। इन सम्मेलनों के जिन प्रमुख विषयों पर विचार किया गया, वे इस प्रकार थे-

(i) सुरक्षा एवं संचार व्यवस्था पर विचार हुआ क्योंकि यह व्यवस्था राष्ट्रमण्डल को एक सूत्र में बाँधने में सहायक थी।

(ii) ब्रिटेन के साथ व्यापार सम्बन्धी समस्या पर भी विचार हुआ।

(iii) यह भी निश्चय किया गया कि भविष्य में इस प्रकार के सम्मेलन समय-समय पर किए जाते रहेंगे।

1894 के बाद तीसरा औपनिवेशिक सम्मेलन एडवर्ड अष्टम के राज्यारोहण के अवसर 1902 में हुआ। चौथा औपनिवेशिक सम्मेलन 1907 में हुआ। इन सम्मेलनों से एक ऐसी पारिवारिक भावना उत्पन्न होने लगी जिससे राष्ट्रमण्डल का स्वरूप साकार होने लगा। 1902 के बाद होने वाले सम्मेलन में निम्नलिखित निर्णय लिये गये-

(i) सम्मेलन का नाम औपनिवेशिक सम्मेलन (Colonial Conference) से बदलकर इम्पीरियल कान्फ्रेंस (Imperial Conference) रख दिया गया। यह निश्चय किया गया कि इसका अधिवेशन प्रत्येक चौथे वर्ष किया जायेगा।

(ii) इस प्रकार के सम्मेलनों में ब्रिटिश सरकार एवं स्वशासी उपनिवेश समान हितों के प्रश्नों पर विचार-विमर्श करेंगे।

(iii) इसके कार्य-संचालन के लिए एक स्थायी सचिवालय की स्थापना की जायेगी। लेकिन यह निर्णय कार्यान्वित नहीं हुआ और सम्बन्धित कार्य उपनिवेश कार्यालय (Colonial Office) द्वारा होता रहा।

(iv) इम्पीरियल कान्फ्रेंस का एक उल्लेखनीय प्रभाव यह हुआ कि ब्रिटिश शासन में उपनिवेश मन्त्री का एक पृथक विभाग स्थापित हो गया।

नये विधान के अनुसार प्रथम इम्पीरियल कान्फ्रेंस 1911 में हुई जिसमें यह मान लिया गया कि वैदेशिक मामलों में उपनिवेशों की सम्मति पर ध्यान दिया जाना चाहिये ब्रिटेन ने अपने उपनिवेशों-कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, न्यूफाउण्डलैण्ड, आयरलैण्ड और दक्षिणी अफ्रीका को इस समय तक शनैः शनैः औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया था और उनमें उत्तरदायी शासन की स्थापना भी कर दी, फिर भी 1911 तक उन्हें विदेश नीति, सन्धि करने, युद्ध प्रारम्भ करने या बन्द करने के क्षेत्र में कोई शक्तियाँ नहीं दी गयीं थीं।

अगस्त, 1914 में ब्रिटेन ने अपने उपनिवेशों से परामर्श लिए बिना जर्मनी के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया, यद्यपि युद्ध के दौरान इनसे समय-समय पर परामर्श किया जाता रहा। ब्रिटिश सरकार ने एक घोषणा के द्वारा डोमिनियनों (उपनिवेशों) को भी युद्ध में सम्मिलित कर लिया। विश्व युद्ध के कारण 1915 में होने वाली इम्पीरियल कान्फ्रेंस नहीं हो सकी। लेकिन 1916 के सम्मेलन में आए हुए प्रधानमन्त्री इम्पीरियल युद्ध मन्त्रीमण्डल (Imperial War Cabinet) की बैठक में सम्मिलित हुए और यह निर्णय लिया गया कि इसकी बैठक प्रतिवर्ष हो युद्ध मन्त्रीमण्डल में युद्ध और शान्ति दोनों पर विचार-विमर्श होता रहा जिससे समस्त महत्वपूर्ण विषयों में प्रधानमन्त्रियों की सलाह-मशविरा करने की प्रथा चल पड़ी। यदि देखा जाए तो आजकल होने वाले प्रधानमन्त्री सम्मेलन का यह पूर्व स्वरूप था।

## 27.6 सम्मेलन में भारत का प्रवेश

1916 तक भारत को न तो औपनिवेशिक सम्मेलन में और न इम्पीरियल कान्फ्रेंस में भाग लेने का अवसर दिया गया। लेकिन कभी-कभी भारत सचिव या इण्डिया ऑफिस के किसी वरिष्ठ पदाधिकारी को प्रेक्षक के रूप में बैठने के लिये अवश्य आमन्त्रित किया गया, लेकिन

केवल अनौपचारिक रूप से। इस काल में भारत कभी भी सम्मेलन में सदस्य के रूप में सम्मिलित नहीं हुआ लेकिन भारत प्रारम्भ से ही सम्मेलन में प्रवेश पाने का इच्छुक था। औपनिवेशिक सम्मेलन एवं उसके बाद इम्पीरियल कान्फ्रेंस में भारत से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित घटनाओं की चर्चा होती थी। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड जाने वाली संचार-व्यवस्था में भारत को विशेष रुचि थी। व्यापारिक सम्बन्धों पर भी भारत के अपने हित थे इसीलिये भारत सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधित्व के लिए उत्सुक था। लेकिन ब्रिटिश सरकार और डोमिनियनों की सरकारें भारत के प्रवेश के पक्ष में नहीं थीं। डोमिनियन सरकारों का कहना था कि इम्पीरियल कान्फ्रेंस स्वशासी राज्यों का संगठन है इसलिये भारत इसमें प्रवेश का अधिकारी नहीं है।

प्रथम विश्वयुद्ध में ब्रिटिश सरकार के आदेश से भारत भी इस युद्ध में सम्मिलित हुआ था। युद्ध में उसने सक्रिय रूप से भाग लिया था। ऐसी परिस्थिति में भारत ने पुनः इम्पीरियल कान्फ्रेंस में प्रवेश पाने की बात उठायी। 22 सितम्बर 1915 को इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कॉन्सिल में इस आशय का एक प्रस्ताव भी पेश किया गया जिसके द्वारा भारत के लिये इम्पीरियल कान्फ्रेंस की सदस्यता की मांग की गयी थी। इस प्रस्ताव पर बोलते हुए गवर्नर जनरल लॉर्ड हार्डिगज ने आश्वासन दिया था कि भारत को इम्पीरियल कान्फ्रेंस की सदस्यता दिलाने का यथेष्ट प्रयास किया जायेगा। कॉन्सिल ने सर्वसम्मति से इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी इसी आशय के प्रस्ताव पास किए। भारतीयों की इस माँग को कई ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का समर्थन भी प्राप्त हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीयों के त्याग एवं बलिदान को देखकर अन्य डोमिनियनों का विरोध भी मन्द होने लगा। इन्हीं परिस्थितियों में लॉर्ड हार्डिगज ने भारत-सचिव पर दबाव डालना प्रारम्भ किया कि वे भारत को इम्पीरियल कान्फ्रेंस का सदस्य बनाने का प्रयास करें। इस सम्बन्ध में लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने भी अपने प्रयत्न जारी रखे। इसी बीच 1916 में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री लायड जार्ज ने इम्पीरियल युद्ध मन्त्रीमण्डल की कान्फ्रेंस बुलाने की घोषणा कर दी, लेकिन इस घोषणा में भारत का किसी भी प्रकार का उल्लेख नहीं किया गया था। भारत-सचिव चेम्बरलेन ने निरन्तर प्रयत्न करके प्रधानमन्त्री को इस बात के लिये प्रसन्न कर लिया कि इम्पीरियल युद्ध मन्त्रीमण्डल कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए भारत को भी आमन्त्रित किया जाए। अन्त में यह निश्चय किया गया कि भारत सरकार का चुना हुआ प्रतिनिधि इन सम्मेलनों में सम्मिलित हो।

4 अप्रैल, 1917 को इम्पीरियल कान्फ्रेंस ने एक प्रस्ताव पारित करके भारत को स्थायी रूप से अपना सदस्य बना लिया। इसके पश्चात् भारत प्रत्येक सम्मेलन में एक सदस्य के रूप में भाग लेता रहा। भारत के इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण घटना थी। यह निर्णय इस दृष्टि से महत्वपूर्ण था कि भारत की डोमिनियन स्थिति प्राप्त करने की आकांक्षाओं को प्रथम बार स्वीकृति मिली। स्वशासी अधिराज्य न होते हुए भी कुछ अंशों में उसे डोमिनियन मान लिया गया। इस प्रकार भारत की औपनिवेशिक स्थिति को पहली बार ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से स्वीकृति प्राप्त हुयी।

## 27.7 प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् राष्ट्रमण्डल का विकास

प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् राष्ट्रमण्डल के स्वरूप में और अधिक निखार आया। डोमिनियनों को पृथक् रूप से पेरिस शान्ति सम्मेलन में भाग लेने का अधिकार मिला और उनके प्रतिनिधियों ने स्वतंत्र रूप से वर्साय-सन्धि एवं अन्य शान्ति संधियों पर हस्ताक्षर किए। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर अनेक डोमिनियनों को राष्ट्रसंघ का सदस्य भी बनाया गया, जिससे उनके स्वतन्त्र अस्तित्व की भी पुष्टि हुई। इन डोमिनियनों के साथ-साथ भारत को भी अपने अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को विकसित करने का अवसर मिला। पेरिस शान्ति-सम्मेलन के पश्चात् इन डोमिनियनों को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्वतन्त्र राष्ट्र का दर्जा दिया जाने लगा। डोमिनियन सरकारें अब विदेशों में अपने कूटनीतिज्ञ तथा वाणिज्य प्रतिनिधि भेजने लगीं। 1926 में कनाडा ने वाशिंगटन में अपने दूत नियुक्त किए। डोमिनियन सरकारें अब परस्पर पृथक् सन्धियाँ भी करने लगीं। इस प्रकार ये डोमिनियन अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना स्थान सुदृढ़ करते रहे। यह प्रक्रिया कभी तेज तो कभी मन्द गति से चलती रही।

1926 की इम्पीरियल कान्फ्रेंस में ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के स्वरूप में और अधिक निखार आया। इस वर्ष इम्पीरियल कान्फ्रेंस में यह स्वीकार किया गया कि ब्रिटिश सरकार के अन्तर्गत इन डोमिनियनों (उपनिवेशों) को बराबर का दर्जा होगा और उन्हें घरेलू तथा वैदेशिक मामलों में स्वतंत्र राष्ट्र मान लिया गया। यह भी स्वीकार किया गया कि इन उपनिवेशों को स्वतन्त्र रूप से अपने वैदेशिक मामलों का संचालन करने का अधिकार होगा, परन्तु प्रत्येक सन्धि पर ब्रिटिश सम्राट या साम्राज्य की मुहर लगनी अनिवार्य होगी। बालफोर घोषणा में कहा गया कि "डोमिनियन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतंत्रता प्राप्त राष्ट्र हैं जो अपनी स्थिति में पूर्णतया समान तथा गृह या विदेश नीति में किसी भी तरह आधीन नहीं हैं। सम्राट के प्रति सामूहिक वफादारी के आधार पर वे संयुक्त हैं और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के नाते एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।" इस सम्मेलन में गवर्नर की स्थिति पर भी विचार-विमर्श किया गया। गवर्नर-जनरल की स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि, "डोमिनियन में गवर्नर जनरल सम्राट का प्रतिनिधि है जिसे डोमिनियन के शासकीय मामलों का प्रशासन में सभी महत्वपूर्ण मुद्दों के, सम्बन्ध में वैसी स्थिति प्राप्त है जैसी कि ग्रेट ब्रिटेन के सम्राट को प्राप्त है और यह कि यह ग्रेट ब्रिटेन के सम्राट की सरकार का या उस सरकार के किसी विभाग का प्रतिनिधि या एजेण्ट नहीं है।"

1930 की इम्पीरियल कान्फ्रेंस में यह बात स्वीकार की गई कि डोमिनियनों (उपनिवेशों) के गवर्नर जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश मंत्रीमण्डल की सलाह नहीं प्रत्युत उपनिवेश के मंत्रीमण्डल की सलाह पर की जानी चाहिए। इसके बाद ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधान 1931 में पारित हुआ जिसे "वेस्ट मिनिस्टर विधान" (The statute of West minister) कहा जाता है। वास्तव में राष्ट्रमण्डल का वैधानिक रूप से जन्म इसी "वेस्ट मिनिस्टरविधान" के द्वारा हुआ क्योंकि इसमें उन देशों के स्वशासन के अधिकार को स्वीकार किया गया जो राष्ट्रमण्डलीय देशों के नाम से जाने जाते थे। कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका आदि देश ऐसे ही थे। "वेस्ट मिनिस्टर विधान" में यह कहा

गया कि "ये राष्ट्र (डोमिनियन) ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासी जन समुदाय है, दर्जा मे समाज है, किसी भी प्रकार कोई एक सदस्य अपने आन्तरिक और वैदेशिक मामलों में दूसरे सदस्य के अधीन नहीं है, यद्यपि ये सभी ब्रिटिश ताज के प्रति समान निष्ठा से आबद्ध है और स्वेच्छा से ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित है।" यह उल्लेखनीय है कि वेस्टमिनिस्टर विधान की स्वीकृति से पूर्व ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की व्यवस्था "औपनिवेशिक नियम औचित्य विधान (Colonial Law Validity Act of 1863) के अनुसार की जाती थी जिसमें उपनिवेशों पर विभिन्न प्रकार के वैधानिक प्रतिबन्ध लगे हुए थे। 1865 में बने इस अधिनियम के अनुसार डोमिनियनों द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम अवैधानिक माना जाता था जो ब्रिटिश पार्लियामेण्ट द्वारा पारित नियमों के विरुद्ध हो। ब्रिटेन का सम्राट किसी भी औपनिवेशिक विधान को रद्द कर सकता था। दूसरे शब्दों में डोमिनियनों की संसदे ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के अधीनस्थ मानी जाती थी लेकिन 1931 में वेस्टमिनिस्टर अधिनियम के अन्तर्गत इन उपनिवेशों की संसदे ब्रिटिश संसद के अधीन नहीं रही। यह उल्लेखनीय है कि "ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल (British Commonwealth of Nation) नाम का सर्वप्रथम आधिकारिक रूप से प्रयोग 16 अप्रैल, 1917 को जनरल स्मट्स द्वारा किया गया था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने पर यह बात स्पष्ट हो गयी कि राष्ट्रमण्डल के सदस्य-राज्यों को स्वतन्त्र रूप से यह निर्णय करने का अधिकार है कि वे युद्ध में भाग लेना चाहते हैं या नहीं। परन्तु यह अधिकार राष्ट्रमण्डल के केवल स्वतन्त्र राज्यों को ही दिया गया था, भारत तथा बर्मा जैसे पराधीन राष्ट्रों को नहीं। फिर भी यह स्पष्ट था कि राष्ट्रमण्डल के सदस्य राज्य परस्पर मित्र हैं और वे एक दूसरे के साथ बंधे हुए हैं। द्वितीय महायुद्ध के अन्त तक ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल कुछ श्वेत देशों का समूह था लेकिन द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद राष्ट्रमण्डल के इतिहास में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ।

महायुद्ध के पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न एशियायी और अफ्रीकी भाग स्वतन्त्र हुए और उनमें से अधिकांश ने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहना स्वीकार किया। स्वाधीनता प्राप्त कर लेने के बाद भारत ने राष्ट्रमण्डल में बने रहने का निश्चय किया। 1950 में गणराज्य बन जाने पर भी भारत ने राष्ट्रमण्डल से अलग न होने का फैसला किया और ब्रिटिश सम्राट को राष्ट्रमण्डल के प्रधान के रूप में स्वीकार किया। इस कारण "ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल" के स्थान पर इसे केवल "राष्ट्रमण्डल" कहने का निश्चय किया गया।

भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका आदि के राष्ट्रमण्डल में बने रहने से इसके स्वरूप में आमूल परिवर्तन हुआ क्योंकि जब तक इसके सदस्य गोरे राष्ट्र और सभी उपनिवेश थे, जबकि ये नये सदस्य राष्ट्र इस प्रकार के नहीं थे। इस घटना को सर आइवर जेनिंग्स (Sir Ivor Jennings) ने "दि कॉन्वेल्थ इन एशिया" (The Commonwealth in Asia) के नाम से सम्बोधित किया है। इन राष्ट्रों के राष्ट्रमण्डल में प्रवेश के बाद नवीन स्वतन्त्रता प्राप्त अन्य एशियायी तथा अफ्रीकन राष्ट्रों ने भी राष्ट्रमण्डल में बने रहने का निर्णय किया जिसके फलस्वरूप आज इसमें गोरे राष्ट्रों का अल्प मत रह गया है और अफ्रीका तथा एशिया के अश्वेत राष्ट्र इसके निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।



## 27.8 राष्ट्रमण्डल की विशेषताएँ

ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की ऐतिहासिक विकास की इस क्रमिक पृष्ठभूमि के पश्चात् यह स्पष्ट है कि आज राष्ट्रमण्डल ब्रिटिश संविधान के समान ही एक विकसित संगठन है जिसके सदस्य वे लगभग समस्त राज्य हैं जो अतीत में ब्रिटिश साम्राज्य के अंग थे केवल बर्मा और दक्षिणी आयरलैण्ड ही इसके अपवाद हैं। जूही इस संगठन का नाम पहले "ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल" था, वहाँ इसे अब केवल "राष्ट्रमण्डल" के नाम से सम्बोधित किया जाता है और वफादारी सम्बन्धी इसके स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। ब्रिटिश सम्राट अब स्वतन्त्र राज्यों के इस मुक्त संगठन का प्रतीक मात्र है। अन्य शब्दों में, राष्ट्रमण्डल के सदस्यों का आधार समानता एवं स्वतन्त्रता है और इस संगठन की सदस्यता उनकी सार्वभौमिकता पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाती।

यह एक ऐसा स्वतन्त्र संगठन है जिसकी स्थापना किसी संविधान, सन्धि या समझौते के द्वारा नहीं हुई है। इसका अपना कोई लिखित नियम अथवा कानून आदि भी नहीं है। इसकी सदस्यता में न तो किसी प्रकार के अधिकार हैं और न किसी प्रकार के उत्तरदायित्वों की बात है। एक सैनिक संगठन के समान इसके सदस्यों के लिये युद्धकाल में एक दूसरे की सहायता करना अनिवार्य तथा आवश्यक भी नहीं है। स्वतन्त्रता और भाईचारे की इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का उदाहरण इतिहास में, अद्वितीय है। इसमें सभी सदस्यों को समान समझा जाता है तथा सभी निर्णय सामान्य हितों को ध्यान में रखकर सामान्य मत के आधार पर लिये जाते हैं ब्रिटेन को इस संस्था में कोई प्राथमिकता नहीं दी गई है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि ब्रिटेन ने राष्ट्रमण्डल के माध्यम से अपने हितों को सुरक्षित बनाए रखने का एक सफल एवं कुशल प्रयास किया है। साम्राज्य के समय जिन देशों के साथ ब्रिटेन के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं अन्य प्रकार के हित सम्बद्ध हो गए थे उनको अचानक तोड़ देना न तो सम्भव था और न उपयोगी। अतः राष्ट्रमण्डल ने ब्रिटेन तथा उसके अतीत साम्राज्य के बीच एक कड़ी का काम किया है।

राष्ट्रमण्डल की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके सदस्य राष्ट्रों में क्षेत्र, नस्ल, भाषा और संस्कृति किसी भी प्रकार की सादृश्यता का होना आवश्यक नहीं है अर्थात् इसमें विविध प्रजाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा और संस्कृति के देश सम्मिलित हैं, किन्तु फिर भी उनमें सबके हितों की एकता सामूहिक लक्ष्य है। इसीलिये राष्ट्रमण्डल के बारे में यह कहा जाता है कि "विभिन्नताओं में ही इसकी एकता निहित है" और यह भी कि "इसकी शक्ति इसकी कमजोरियों में ही निहित है।" राष्ट्रमण्डल के राज्यों की एक बड़ी पहचान यह है कि इनके राजदूत एक दूसरे के देश में "उच्चायुक्त" (High Commissioner) कहे जाते हैं साथ ही राष्ट्रमण्डलीय देश एक दूसरे के नागरिकों को अपने यहाँ पर विशिष्ट प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करते हैं।

राष्ट्रमण्डल के सदस्य राष्ट्र राजनीतिक एकता के सूत्र में बंधा हुआ नहीं है। इसके सभी राष्ट्र स्वतन्त्र तथा समान हैं। इनमें ब्रिटिश सकट या साम्राज्य के प्रति किसी भी प्रकार की राजभक्ति होना जरूरी नहीं है, यद्यपि ब्रिटिश सम्राट या साम्राज्य ही अध्यक्ष होता है और इसके सम्मेलन भी प्रायः ब्रिटेन में होते हैं। राष्ट्रमण्डल का प्रत्येक सदस्य राष्ट्र अपनी इच्छानुसार

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों का अनुसरण करता है। ये सदस्य राष्ट्र एक दूसरे के साथ अपने पारस्परिक सम्बन्धों में पूर्णतः सार्वभौम एवं स्वतन्त्र होते हैं, यद्यपि आशा यही की जाती है कि उनमें मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बने रहेंगे। राष्ट्रमण्डल के अधिकांश राष्ट्र प्रजातन्त्रात्मक हैं।

राष्ट्रमण्डल में किसी भी प्रकार के प्रस्ताव पारित नहीं किए जाते। न इसका कोई महासचिव है और न ही केन्द्रीय कार्यालय। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र अपने यहाँ पर उससे सम्बन्धित एक विभाग रखता है जिसका काम दूसरे सदस्य राज्यों के साथ सम्पर्क बनाए रखना है। वस्तुतः यह कहना उपयुक्त होगा कि राष्ट्रमण्डल एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन है जिसका ध्येय सम्पर्क और जानकारी प्राप्त करना है।

## 27.9 सारांश

इस इकाई में आपने राष्ट्रमण्डल का अर्थ एवं स्वरूप का अध्ययन किया। राष्ट्रमण्डल के संगठन में मुकुट, राष्ट्रमण्डलीय प्रधानमन्त्री सम्मेलन, राष्ट्रमण्डलीय सम्बन्ध कार्यालय एवं राष्ट्रमण्डलीय सचिवालय प्रमुख हैं। राष्ट्रमण्डल की संस्थाओं में राष्ट्रमण्डलीय संघ, राष्ट्रमण्डलीय कृषि ब्यूरो एवं राष्ट्रमण्डलीय आर्थिक सलाहकार परिषद का महत्वपूर्ण स्थान है। राष्ट्रमण्डल के प्रमुख उद्देश्यों में प्रजातन्त्र के आदर्श एवं मानवीय अधिकारों की प्राप्ति, बाहरी आक्रमणों के विरुद्ध सामान्य सुरक्षा की भावना आर्थिक कल्याण एवं सामान्य हितों की रक्षा करना है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रमण्डल का ऐतिहासिक विकास, इसके सम्मेलनों में भारत का प्रवेश आदि ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं जिन्होंने तत्कालीन राजनीतिक को प्रभावित किया। राष्ट्रमण्डल की प्रमुख विशेषताओं में सदस्य राष्ट्रों की स्वतन्त्रता एवं समानता की भावना, सामान्य हितों के निर्णय स्वीकार करना, क्षेत्र, भाषा, नसल, धर्म और संस्कृति को महत्त्व न देना-ऐसी विशेषताएँ हैं जिसके कारण आज भी राष्ट्रमण्डल एक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है।

## 27.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

- i) ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल पर एक निबन्ध लिखिए।
- ii) ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का अर्थ, उद्देश्यों एवं संगठन का विवेचन कीजिए।
- iii) द्वितीय विश्वयुद्ध तक ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के विकास का विवेचन कीजिए।
- iv) ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।

## 27.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- (i) पामर एण्ड परकिन्स, इण्टरनेशनल रिलेशन्स
- (ii) कोटमॉन, जे., दि ब्रिटिश कामनवेल्थ ऑव नेशन्स
- (iii) दीनानाथ वर्मा, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध
- (iv) मथुरालाल शर्मा, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

## इकाई- 28

### सुदूर-पूर्व में संकट-मंचूरिया संकट

#### इकाई की रूपरेखा

- 28.0 उद्देश्य
- 28.1 प्रस्तावना
- 28.2 चीन में प्राचीन राजवंश
- 28.3 मंचूरिया-चीन के संबंध (प्राचीन समय में)
- 28.4 चीन का एकाकीपन टूटा
- 28.5 चीन-जापान युद्ध में मंचूरिया
- 28.6 रूस का मंचूरिया में नाटकीय प्रवेश
- 28.7 रूस-जापान युद्ध में मंचूरिया
- 28.8 संधि की शर्तें
- 28.9 चीन-जापान में तनाव व मंचूरिया पर सैनिक अभियान
- 28.10 जहाजी बेड़े को सीमित करने का प्रस्ताव
- 28.11 जापान की मंचूरिया पर विजय
  - 28.12.1 चीन-जापान युद्ध का प्रारंभ
  - 28.12.2 चीन-जापान समझौता
  - 28.12.3 चीन-जापान युद्ध
- 28.13 जापान का द्वितीय विश्व युद्ध में प्रवेश
- 28.14 मंचूरिया पर रूस का आक्रमण
- 28.15 संधि व शान्ति के प्रयास
- 28.16 कोरिया संकट
- 28.17 रूस-चीन संबंध
- 28.18 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 28.19 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 28.0 उद्देश्य

विश्व राजनीति में सभी राष्ट्र अपने-अपने स्थान पर विशेष भूमिका निभाते हैं। सुदूर पूर्व के नाम से चीन, जापान के नाम स्वतः ही स्मरण हो आते हैं दोनों के बीच राजनैतिक संकट का कहीं अन्त ही दिखाई नहीं देता। दोनों की प्रतिस्पर्धा में यूरोपीय राष्ट्र भी विशेष भूमिका निभाते रहे हैं और अपने लाभ के लिये कभी युद्ध का कभी कूटनीति का तो कभी व्यापारिक सुविधाओं का आसरा लेते रहे हैं मंचूरिया चीन का ही एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जो उसकी उत्तरी सीमा पर स्थित है। दक्षिण पूर्व में कोरिया और जापान तथा उत्तर व पश्चिम में रूस तथा साम्यवादी मंगोलिया ने मंचूरिया की स्थिति बहुत ही महत्वपूर्ण बना दी है। चीन,

जापान के बीच युद्ध भी मंचूरिया की धरती पर लड़ा गया और रूस, जापान युद्ध भी मंचूरिया की धरती पर ही लड़ा गया। यहाँ तक कि द्वितीय विश्व युद्ध भी मंचूरिया की धरती पर लड़े बिना समाप्त नहीं हुआ। ऐसे महत्वपूर्ण क्षेत्र का इतिहास पढ़ने, सोचने एवं मनन करने का विषय है। इसके संकट का अध्ययन विश्व राजनीति के अनेकानेक संकटों से उबारने में सक्षम बनायेगा। यही उद्देश्य लेकर हम इसका विस्तृत अध्ययन कर रहे हैं।

## 28.1 प्रस्तावना

चीन विश्व के प्राचीनतम देशों में से है पाषाण काल से ही यहाँ पर चीनी प्रजाति के लोग रहते हैं हवाइहो तथा यांगटीसी नदी का अस्तित्व भी प्राचीन तम बताते हैं। ये लोग मंगोल प्रजाति से अलग थे मंगोल जाति के लोग लड़ाकू और युद्ध प्रिय थे लेकिन चीन के लोग शान्ति प्रिय थे और खेती बाड़ी में रुचि रखते थे।

मंचूरिया चीन के उत्तरी भाग में स्थित है। मंगोलिया इसकी पश्चिमी सीमा बनाता है। कहते हैं कि मंगोलों के बर्बर आक्रमण से रक्षा के लिये ही चीन सम्राट हवाइगटी ने मंचूरिया की सीमा से ही लगती हुई चीन की विशाल दीवार बनाई थी जो आज भी मौजूद है। जो 2250 मील लम्बी और 15 फुट से 20 फुट ऊँची तथा इतनी ही चौड़ी है। मंगोलिया से सटा हुआ ही रूसी साइबेरिया है। पूर्वी सीमा पर कोरिया तथा जापान है। साथ ही मंचूरिया में स्थित विशाल खनिज संपत्ति ने इसके महत्व को और भी बढ़ा दिया है।

## 28.2 चीन में प्राचीन राजवंश

चीन में शुंग, युआन, मिग तथा मंचु जाति के चींग वंश ने 17 वीं शताब्दी तक शासन किया। चींग वंश ने ही आगे 1912 ई. तक शासन किया। इसके बाद गणतंत्र की स्थापना हुई।

## 28.3 मंचूरिया और चीन के सम्बन्ध प्राचीन समय में

प्रारम्भ में मंचूरिया पर चीन का ही शासन नहीं रहा। 16वीं शताब्दी में यहाँ खीतान वंश मंगोलियन लोगों का अधिकार हो गया था और वहाँ एक पृथक राज्य की स्थापना हुई। 12वीं शताब्दी में जुरोनो जाति ने मंचूरिया से खेतानों का शासन समाप्त कर अपना अधिकार कर लिया। इस युद्ध में खेतानों के विरुद्ध जुरोनो को चीन के शुंग वंशीय राजाओं ने सहायता दी थी। लेकिन कालान्तर में जुरोनो से भी उनकी नहीं बनी। तब जुरोनो ने चीन पर आक्रमण किया और शुंगवंश की राजधानी केईफेन्स पर 1227 ई. में अधिकार कर लिया। तब चीन के शुंग वंश ने अपनी नई राजधानी हांगचाऊ बनाई। इसके बाद मंगोलिया में चंगेजखां का बर्बर शासन हुआ। चंगेजखां व उसके बेटे कुबलाई खां के आक्रमणों से कौन अपरिचित होगा। कुबलाई खां ने अन्तिम शुंग राजा का अन्त कर चीन पर अपना अधिकार जमा लिया। स्पष्ट है कि मंचूरिया इसी राजनैतिक उथल पुथल में किसी प्रकार का स्थायित्व प्राप्त नहीं कर सका और कुबलाई खां के बाद चीन के युआन वंश ने मंचूरिया पर भी अधिकार कर लिया। 1912 में गणतंत्र की स्थापना की तक चीनी राजाओं के ही अधिकार में था।

## 28.4 चीन का एकाकीपन टूटा

इस समय तक चीन विश्व के अन्य देशों के साथ मिलने जुलने से कतराना था। न तो चीन के प्रतिनिधि विदेशों में जाते थे न विदेशों से यहां आते थे केवल एक बन्दरगाह कैंटन से ही विदेशी व्यापार कर सकते थे। वहाँ भी असुविधाजनक स्थिति में ही सम्भव था।

19 वीं 20वीं सदी में यूरोपीय देश समस्त संसार में कुशल व्यापारी बन कर छा रहे थे। तब चीन और जापान भी इनकी छूट से न बच सके। 1840-42 में इंग्लैंड ने चीन के विरुद्ध अफीम का युद्ध जीत लिया और चीन में अफीम का आयात सुलभ हो गया। कैंटन के बन्दरगाह के अतिरिक्त 4 और बन्दरगाह यूरोपीय देशों के व्यापार के लिये खोलने पड़े। हांगकांग का बन्दरगाह तो पूर्ण रूपेण इंग्लैंड को ही दे दिया गया। 1842 की नानकिंग, की इस संधि के बाद तो अन्य देशों ने भी चीन में अपने पैर बढ़ाये और 1844 में चीन में बैल्जियम, फ्रांस, हालैंड, प्रशा (जर्मनी) तथा पुतर्गाल और स्पेन ने अपने अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित कर दिया। धीरे धीरे 40 ऐसे बन्दरगाह विदेशी व्यापार के लिये खोल दिये गये। ये बन्दरगाह मंचूरिया के तट पर न्यूचांग से लेकर दक्षिण में स्वाटोव तक फैले थे। ठीक इसी प्रकार जापान में भी विदेशी व्यापारी आने लगे ओर एशिया के इन दोनों देशों का एकाकीपन टूट गया।

## 28.5 चीन-जापान युद्ध में मंचूरिया

चीन के विस्तार में मंगोलिया, मंचूरिया, कोरिया और तिब्बत भी सम्मिलित थे। पड़ोसी देश जापान के पास केवल सामुद्रिक द्वीपों की एक लम्बी श्रृंखला ही थी। विदेशी व्यापार से एकाकीपन टूटते ही जापान, ने एक नई करवट ली। 20 वीं सदी में प्रवेश करते करते जापान स्वयं एक उन्नत औद्योगिक राष्ट्र बना। यूरोपीय सिद्धान्तों पर आधारित सेना का संगठन कर, आधुनिकतम सैन्य हथियारों से सज्जित जापान यूरोपीय राष्ट्रों के समकक्ष हो गया था। अब उसे अपने उद्योगों के लिये प्रचुर मात्रा में कच्चा माल चाहिये था बने हुए माल के लिये बाजार चाहिये था और अपनी बढ़ती हुई आबादी के लिए जमीन चाहिये थी इन सभी वांछित इच्छाओं की पूर्ति के लिये पड़ोसी देश चीन के विशाल भू-भाग पर जापान की निगाह थी, मंचूरिया और कोरिया में विशाल खनिज के भंडार थे। मशीनी वस्तुओं के बेचने को चीन की विशाल आबादी में कमी आ ही नहीं सकती थी और जापान आबादी के लिये विशाल भू-भाग भी उपलब्ध थे। चीन ने अपने देश को आधुनिकतम बनाने की कोई कोशिश नहीं की थी। वह तो अभी भी अंधविश्वासों में जकड़ा था।

1894 ई. में जापान ने चीन पर आक्रमण कर दिया। कोरिया और मंचूरिया दोनों ही प्रदेशों पर जापान की निगाह थी ही। कोरिया में सेना उतारने ही चीन घबरा गया। जल्दी जल्दी सेना एकत्रित कर अपने परम्परागत साज सज्जा के साथ चीन ने जापान से युद्ध किया किन्तु आधुनिकतम हथियारों के सामने टिक नहीं सके। जापान में कोरिया ही नहीं मंचूरिया भी जीत लिया और चीनी सेना को खदेड़ दिया। 1895 में शिमोनोसेकी की संधि हुई इसके अनुसार चीन ने जापान को पोर्ट आर्थर, लियोतुंग प्रायद्वीप, फारमोसा द्वीप तथा पेस्केडोर्स द्वीप समूह दे दिया। साथ ही क्षतिपूर्ति हेतु 175000000 डालर भी दिये। कोरिया को चीन की अधीनता से मुक्ति मिल गई वह स्वतंत्र राज्य बन गया।

इस संधि ने सुदूर पूर्व में जापान को बहुत शक्ति शाली बना दिया शक्ति संतुलन का सिद्धान्त भी टूट रहा था। अतः रूस, फ्रांस और जर्मनी ने चीन की ओर से इस संधि का विरोध किया दबाव के कारण जापान ने पोर्ट आर्थर और ल्योतुंग प्रायद्वीपीय चीन को वापिस दे दिया और बदले में एक विशाल धन राशि स्वीकार कर ली। रूस की भी मंचूरिया, पोर्ट आर्थर और लियोतुंग पर निगाह थी। चीन की कमजोरी पता लग ही चुकी थी। जापान को दबा ही दिया था। अतः 1898 ई. में रूस ने इस अवसर का लाभ उठा कर इन पर अधिकार जमा लिया।

1899 में जर्मनी ने शान्तुंग प्रायद्वीप और क्वाओ बन्दरगाह 99 वर्ष के, पट्टे पर चीन से ले लिया। दक्षिण चीन में यांगसीटी नदी के क्षेत्र में अंग्रेजों का प्रसार बढ़ रहा था। अनाम के उत्तर में फ्रांसीसी प्रभावशाली थे।

## 28.6 रूस का मंचूरिया में नाटकीय प्रवेश

रूस यूरोपीय राष्ट्र होने के साथ साथ साइबेरिया के विशाल एशियाई प्रदेश का भी स्वामी है। इतना विशाल भूभाग अधिकार में होने के साथ विशाल समुद्र भी रूस के पास है। लेकिन अफसोस! सारे समुद्र बर्फ से ढके रहते हैं। बाल्टिक सागर से जर्मनी ने रास्ता रोक रखा है। आगे चलकर इंगलिश चैनल पर ब्रिटेन पहरा देता है और दक्षिण में काला सागर के तट पर टर्की, फ्रांस, इंग्लैंड सभी रक्षक बने हैं। पूर्वी यूरोप का इतिहास इन घटनाओं से भरा हुआ है। इसलिये सुदूरपूर्व के सागर में पोर्ट आर्थर का बन्दरगाह रूस के लिये वरदान सिद्ध होगा। लेकिन साथ ही जापान के लिये औद्योगिक और व्यापारिक शक्ति के रूप में मौत का पैगाम भी दे रहा था। अतः रूस ने 1892 में पहले तो लेनिनग्राड से ब्लाडिवोस्टक तक एक विशाल रेलवे लाइन बनाई लेकिन ब्लाडिवोस्टक का बन्दरगाह भी केवल 8 माह तक ही व्यापार के लिये खुला रहता था। 4 माह सर्दी में बर्फ से ढँक जाता था। अतः अब पोर्ट आर्थर पर निगाह जम गई थी वह भी 1898 में उसने ले लिया। किन्तु इस विजय को स्थायित्व देने के लिये मंचूरिया अधिकार में होना अति आवश्यक था। इस कार्य में यूरोपीय देशों की अनुमति की आवश्यकता थी। ब्रिटेन ने इसी समय पोर्ट आर्थर के दूसरी तरफ वाई हवाई का बन्दरगाह हथिया लिया था। 1902 में ब्रिटेन ने जापान के साथ एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर किये इसकी शर्तों के अनुसार अब रूस के विरुद्ध दोनों देश एकमत हो गये थे। कोरिया तथा मंचूरिया में तथा समुद्र पर रूस की गतिविधियाँ रोकी जावेगी। युद्ध के, आसार नजर आने पर अन्य यूरोपीय राष्ट्रों से भी मदद मांगी जावेगी। रूस ने इस संधि को एक धमकी समझा किन्तु इस धमकी का असर उल्टा ही हुआ रूस ने मंचूरिया में सेना का जमाव कर दिया। कोरिया की भी नाकेबन्दी कर दी तथा पोर्ट आर्थर में अपने जहाजों की संख्या बढ़ा दी और अच्छी किलेबंदी करके पूरी सुरक्षा का प्रबन्ध कर लिया।

## 28.7 रूस-जापान युद्ध में मंचूरिया

रूस की तैयारियाँ जापान में भय उत्पन्न कर रही थी। जापान बार बार चेतावनी दे रहा था। किन्तु रूस ने सुनवाई नहीं की। 1904 में स्थिति विस्फोटक हो गई जापान ने अन्य यूरोपीय राष्ट्रों की शह पाकर युद्ध की पहल स्वयं ही कर दी। पोर्ट आर्थर में स्थित रूसी बेड़े पर भयंकर आक्रमण कर दिया। पोर्ट आर्थर को घेर लिया गया। साथ ही स्थल सेना की एक विशाल

टुकड़ी ने यलू से रूसी सेना को खदेड़ कर कोरिया से बाहर कर दिया। जनरल ओको की अधीनता में जापानी सेना ल्योतुंग प्रायद्वीप पर उतर गई और पोर्ट आर्थर से प्रायद्वीप की सेना का सम्बन्ध तोड़ दिया गया। पोर्ट आर्थर का घेरा तंग कर दिया गया। उधर जनरल ओको मंचूरिया की राजधानी मैकडन की ओर बढ़ने लगा और पोर्ट आर्थर के घेरे का नियंत्रण एवं निरीक्षण जनरल नोगी को सौंप दिया। रूसी जनरल कुराफ्टकिन जो अब तक मुकडन की रक्षा कर रहा था वहाँ से हट कर दक्षिण में चला गया और पोर्ट आर्थर के घेरे को तोड़ने के लिये प्रयत्नशील हुआ। भयंकर युद्ध हुआ 4 सितम्बर को जापानियों की स्थल सेना ने त्योगांग में प्रवेश किया और रूसी सेना को हराते हुए मंचूरिया की राजधानी मकडन पर पहुँच गये। इसी समय जापानी बेड़े ने पोर्ट आर्थर ले लिया तथा ब्लाडिवोस्टक पर रूसी बेड़े को हरा दिया। अब रूसी सेना व बेड़े की हालत सभी मोर्चों पर नाजुक होती जा रही थी। 1 जनवरी को रूसी सेना ने मकडन खाली कर दिया था जनरल ओको की सेना ने वहाँ पूरा अधिकार कर लिया था। भारी धन एवं जन की हानि हुई थी। रूस के 12000 सैनिक मारे गये या घायल हुए जापान के भी इतने सैनिक मारे गये या घायल हो गये। रूस ने आखिरी दाँव लगाया। एक नया रूसी बेड़ा एडमिरल रोजेस्ट बैसकी के नेतृत्व में अफ्रीका का चक्कर लगा कर जापानी समुद्र में पहुँच गया। युद्ध पुनः शुरू हो गया जापानी जनरल टोगों ने इसको भी सुषिमा के पास हरा कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। आखिरी आशा भी समाप्त हो गई। ठीक इसी समय अमरीका के प्रेसीडेंट रुजवेल्ट ने मध्यस्थ बन कर दोनों पक्षों के मध्य समझौता करवा दिया।

## 28.8 संधि की शर्तें

पोर्टस माउथ के स्थान पर संधि हुई। अब पोर्ट आर्थर का पट्टा जो चीन से रूस ने ले लिया था जापान को दे दिया गया और कोरिया को जापान का प्रभुत्व क्षेत्र घोषित कर दिया। चीन यद्यपि इस युद्ध में पाटी नहीं था किन्तु युद्ध चीन के ही अधीन राज्यों, के लिये लड़ा गया था इसलिये इसे भी संधि में सम्मिलित किया गया। मंचूरिया को रूस और जापान दोनों ही लेना चाहते थे और दोनों ही एक दूसरे को देना भी नहीं चाहते थे अतः चीन को लौटा कर इस झगड़े को समाप्त कर दिया गया।

## 28.9 चीन-जापान में तनाव व मंचूरिया पर सैनिक अभियान

चीन को मंचूरिया मिल तो गया किन्तु इससे जापान चिढ़ गया और किसी न किसी प्रकार इस पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करने लगा। वैसे तो जापान का अधिकार क्षेत्र सखालीन प्रायद्वीप से फारमूसा तक फैला हुआ था। किन्तु मंचूरिया के प्रश्न पर कूटनीतिक विवाद चलता ही रहा। जापान अपनी सैनिक तथा जहाजी शक्ति बढ़ाता रहा। इसी बीच प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान जापान एक प्रबल शक्ति बन गया था और आधुनिक यूरोप के रंगडंग में पूरी तरह से दीक्षित हो चुका था। वैज्ञानिक आविष्कारों के नवीनतम उपयोग ने जापान को एशिया में नायक बनने की भूमिका के लिये प्रस्तुत कर दिया था।

चीन पर उसने 1915 में 21 मांगे थोप दी जिन्हें चीन मना नहीं कर सका। 1919 में और भी रियासतें जो अब तक चीन को मिली हुई थी समाप्त कर दी। यूरोप इन दिनों प्रथम विश्व युद्ध में व्यस्त था और रूस अपने ही अन्दर सोवियत क्रान्ति के कारण प्रशासनिक बदलाव

तथा राज्य सत्ता -के हस्तान्तरण की उथलपुथल में जूझ रहा था। चीन भी अपने आन्तरिक झगड़ों में लगा था। कुल मिलाकर सारी स्थिति जापान के अनुरूप ही थी। किन्तु विश्व के राष्ट्र जापान की गतिविधियों पर निगाह रखते थे। उन्होंने 4 फरवरी, 1922 को वाशिंगटन के स्थान पर जापान को चीन से संधि करने पर विवश किया। जापान से कहा गया कि चीन के दो द्वीप कयाओ चाऊ और शातुंग जो जर्मनी के पास थे और प्रथम विश्व युद्ध के समय जर्मनी को व्यस्त एवं युद्ध पीड़ित जान कर 1915 में जापान ने पट्टे पर ले लिये थे चीन को वापिस कर दे। जापान ने चुपचाप रहकर स्वीकृति दे दी लेकिन बाद में उसने किसी भी समझौते से इन्कार कर दिया और पूर्व नियोजित योजना के अनुसार जापान ने अपनी सेनाएँ शंघाई और मंचूरिया पर अधिकार करने को भेज दी। 1921, सितम्बर माह में मंचूरिया पर जापान का अधिकार पक्का हो गया। और कोई कुछ न कर सका।

चीन ने राष्ट्र संघ को अपील भेजी। राष्ट्र संघ ने विचार किया और प्रतिक्रिया स्वरूप एक कमीशन बिठा दिया। कमीशन ने सुदूर पूर्व में मौके पर जाकर जाँच की और राष्ट्र संघ को रिपोर्ट दी। परिणामस्वरूप जापान को आदेश जारी किया गया कि आक्रान्ता जापान तुरंत मंचूरिया खाली करे। किन्तु जापान शक्ति के अभिमान में राष्ट्रसंघ की अवहेलना कर गया और मंचूरिया में जापान अधिकार जम गया। हाँ प्रतिरोध स्वरूप जापान ने राष्ट्रसंघ की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।

## 28.10 जहाजी बेड़े को सीमित करने का प्रस्ताव

राष्ट्र संघ अपनी तरफ से पूरा पूरा प्रयत्न कर रहा था। 1921 में वाशिंगटन में पहली कान्फ्रेंस जहाजी बेड़े को सीमित करने के लिये हुई थी। इसमें ब्रिटेन फ्रांस अमरीका, इटली व जापान सम्मिलित हुए एक समझौता हुआ कि अमरीका 5, ब्रिटेन 5 और जापान 3 के अनुपात में तथा फ्रांस एवं इटली 1.6.7 के अनुपात में नौसेना का संगठन करें। यह तो युद्ध पोतों की बात हुई अब 1927 में व्यापारिक पोतों के बारे में निर्णय हेतु जेनेवा में सम्मेलन बुलाया गया किन्तु कोई सहमति न हो सकी। 1930 में पुनः लंदन में एक कान्फ्रेंस बुलाई गई। कोई समझौता न हो सका। 1922 का अनुपातिक समझौता भी अब टूट गया और नौसेना की वृद्धि अबाध गति से बढ़ने लगी।

## 28.11 जापान की मंचूरिया पर जीत

1931 में जापान ने सभी समझौते ताक पर रख कर मंचूरिया को अपने अधिकार में कर लिया। वहाँ पर एक कठपुतली सरकार की स्थापना कर के चीन के एक पूर्व राजा हेनरी-यू-यी को नाम मात्र को अधिकार देकर राजा बना दिया। स्मरण रहे चीन में प्रजातंत्र की स्थापना के बाद वहाँ का राजा निवार्सित जीवन व्यतीत कर रहा था। अब मंचूरिया का नाम ही बदल दिया गया। उसे मंचूको का नाम दिया गया। यूरोपीय राष्ट्रों ने तथा चीन ने इस योजना को स्वीकृति नहीं दी। नये राज्य तथा नये राजा को मान्यता नहीं दी। किन्तु जापान ने अपने अहंकार के वशीभूत इस अस्वीकृति की कोई परवाह नहीं की और मंचूरिया (मंचूको) जापानी साम्राज्य में बाकायदा मिला लिया गया।



### 28.12.1 चीन-जापान युद्ध का आरम्भ

मंचूरिया को ले लेने से जापान के साहस में वृद्धि हो गई। जापान सेनाएँ चीन की मुख्य भूमि पर उतरती चली गई। चाहर और होपई के प्रदेश उससे छीन लिये गये। चीन देखता ही रह गया। चीन ने राष्ट्र संघ का दरवाजा खटखटाया। प्रार्थना पत्र में कहा गया कि केलोगब्रियाँ के समझौते को लागू किया जावे। राष्ट्र संघ ने तुरंत लिटन कमीशन की नियुक्ति कर दी। विशेष जाँच के बाद लिटन कमीशन ने रिपोर्ट की कि मंचूरिया (मंचूको) चीन को साँप देना चाहिए। जापान ने सुनी अनसुनी कर दी। वह तो राष्ट्र संघ को छोड़ चुका था। उसके आदेश की जापान के आगे कोई महत्ता ही नहीं थी। जापान की सेनाएँ बढ़ती ही गई। नेहोल प्रान्त पर अधिकार करके चीन को घुटने टेकने के लिये बाध्य कर दिया।

### 28.12.2 चीन-जापान समझौता

चीन में अब जापान के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया। सम्पूर्ण चीनी तट, मंचूरिया, कोरिया, पोर्ट आर्थर, ल्योतुंग प्रायद्वीप सभी जापान के अधिकार में आ गये। जापान को डर था कि यूरोपीय राष्ट्र हस्तक्षेप करेंगे। इसलिये उसने सुदूर पूर्व में "मुनरो सिद्धान्त" की घोषणा कर दी। अर्थात् चीन के मामले में किसी भी पश्चिमी शक्ति अथवा अमरीका को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। केवल जापान पर ही इस पूरे क्षेत्र की सुरक्षा एवं शान्ति का उत्तरदायित्व है।

### 28.12.3 चीन-जापान युद्ध

अब प्रारम्भ हुई चीन जापान युद्ध की लम्बी श्रृंखला को यूरोपीय देश चुपचाप देखते रहे। जापान ने चीन पर आक्रमण का बहाना भी ढूँढ लिया। मार्को पोलो के पुल पर अधिकार के सामान्य से प्रश्न पर बहाना बना कर जापान ने युद्ध शुरू कर दिया। चीन में इन दिनों गृह युद्ध छिड़ा हुआ था। साम्यवादी तथा राष्ट्रवादी चीनी सेनाएँ आपस में लड़ रही थी। जापान ने सोचा था यह उपयुक्त समय है। जापानी सेनाएँ आगे बढ़ने लगी।

चीन के राष्ट्र प्रेमी लोगों ने इस समय समझ से काम लिया। आपसी झगड़े समाप्त करके उन्होंने जापानी सेना का मुकाबला किया किन्तु जापान के पास विशाल आधुनिकतम किस्म के हथियारों से सज्जित सेना थी उसका मुकाबला कठिन था फिर भी चीन वासी हार मानने वाले नहीं थे। एक एक इंच भूमि के लिये बहादुरी से लड़े। कहीं हारे कहीं जीते। किन्तु जापान ने चतुराई से समस्त चीनी पूर्वोत्तर क्षेत्र रीस्टन से केटन तक अपने अधिकार में ले लिया। पश्चिमोत्तर चीन साम्यवादी नेता माओत्सुंग के अधिकार में थे और पश्चिमी चीन राष्ट्रवादी नेता चांगकाई शेक के अधिकार में थे साम्यवादी चीन की राजधानी यूनान थी और राष्ट्रवादी चीन की राजधानी चुंग किंग थी। छुटपुट लड़ाइयाँ चलती रही किन्तु स्थिति का निर्णय किसी एक के पक्ष में नहीं हुआ जापान चीन को हरा नहीं सका और नहीं सम्पूर्ण चीन पर अपना अधिकार जमा सका। किन्तु इसके विपरीत चीन भी जापान को अपनी मुख्य भूमि से निकाल नहीं सका। यूरोपीय राष्ट्र भी अपनी अपनी समस्याओं, में उलझे थे। अतः चीन जापान के सम्बन्धों पर कोई ध्यान ही नहीं दे सका।

तभी द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका 1939 में फूट पड़ी। चीन और जापान दोनों अपने आपसी युद्धों में व्यस्त रहे। 1940 तक इन छुट पुट लड़ाइयों से चीन की धरती जूझती रही। उधर साम्यवादी तथा राष्ट्रवादी चीनी सेनाएँ भी अपने अधिकार के लिये लड़ती रही।

राष्ट्र संघ ने जापान की विजय तथा अधिकार क्षेत्र को कभी स्वीकार नहीं किया। उधर जापान ने राष्ट्र संघ के अस्तित्व को ही नकार दिया।

### 28.13 जापान का द्वितीय विश्व युद्ध में प्रवेश

अब जापान के पास अपनी विजयों को स्वीकार करवाने का एक ही रास्ता था। विश्वयुद्ध में सम्मिलित हो जाना। जर्मनी एवं इटली के पूरी राष्ट्रों के साथ ही उसके विचारों का सामंजस्य बैठता था अतः उन्हीं के साथ समझौता कर लिया। रूस को युद्ध से अलग रखने के लिये तटस्थता का एक समझौता उसके साथ भी किया। उधर चीन ने इंग्लैंड अमरीका तथा फ्रांस के साथ गठबन्धन कर लिया। अब इसके साथ ही विश्व युद्ध ने सुदूर पूर्व को भी युद्ध क्षेत्र में बदल दिया। स्मरण रहे यह युद्ध यूरोप अफ्रीका में तो लड़ा ही गया प्रशान्त महासागर, अंध महासागर और सुदूर पूर्व द्वीप समूह में भी लड़ा गया था।

द्वितीय विश्व युद्ध का प्रथम दौर पोलैंड पर 1 सितम्बर 1939 को आरम्भ हुआ जर्मन सेना ने पोलैंड की धरती पर पैर रखे थे। दो दिन पीछे ही ब्रिटेन व फ्रांस ने पोलैंड के पक्ष में युद्ध में प्रवेश किया। जर्मन सेनाओं ने साइलेशिया जीत कर वारसा में प्रवेश किया। 17 सितम्बर को जर्मनी के साथ हुए गुप्त समझौते के अनुसार रूसी सैनिक पोलैंड की सीमा पर पूर्व की ओर से टूट पड़े।

4 सितम्बर को बेल्जियम सीमा पर ब्रिटेन व फ्रांस की सेना के ब्रिटिश जनरल वाई काउन्ट तथा फ्रांस के जनरल गेमलिन के नेतृत्व में आक्रमण कर दिया। 'मेजिनो लाइन' पर जर्मन सेना सतर्क खड़ी थी। इसके सामने ही सीजफ्रीड लाइन प्रभावी थी। रूस ने अब एस्थेनिया, लेटिविया, लिथुआनिया पर आक्रमण कर अपने राज्य में मिला लिया। फिनलैंड पर जर्मन आक्रमण विफल कर दिया गया। 15 मई को डचों ने आत्म समर्पण कर दिया। 9 जून को पेरिस पर आक्रमण किया।

इसी समय इटली ने जर्मनी के पक्ष में युद्ध में प्रवेश किया। फ्रांस ने तट की रेखा से उत्तर पश्चिम तक का समस्त क्षेत्र जर्मनों को सौंप दिया। फ्रांस का बेड़ा विसैन्य कर दिया और इटली को जिबूटी का बन्दरगाह दे दिया और ट्यूनिशिया अलजीयर्स तथा फ्रेंच सोमाली लैंड विसैन्य कर दिये गये। फ्रांस की राजधानी बाइशी हो गई।

बाल्कन राष्ट्रों में जर्मनी ने पहल की तो बल्गेरिया ने जर्मनी का साथ दिया। यूगोस्लाविया तथा यूनान में विजय प्राप्त की। अफ्रीका में मिश्र, सूडान, सोमाली लैंड अबीसीनिया पर इटली के सैनिक छा गये। जनरल रोमेल की सहायता से 1942 तक इटली का सभी क्षेत्रों पर वर्चस्व स्थापित हो गया।

रूस ने बहुत कुछ जीत लिया था। जर्मनी ने 22 जून, 1941 को रूस पर आक्रमण कर दिया। 22 जुलाई को ब्रिटेन ने भी रूस से समझौता कर लिया। फिनलैंड ने जर्मनी का साथ दिया। जर्मन क्षेत्र बाल्टिक सागर क्षेत्र में लेनिनग्राड तक, दक्षिणी क्षेत्र में जनरल रुडेस्टेंट ने

ओडेसा, कीव, क्रीमिया तक और तीसरी कमाण्ड ने काकेशस तक जीत लिया लेकिन नवम्बर, 1942 को स्थिति ने मोड़ ले लिया और रूसी जनरल जुकोव वे जर्मन घेरे को तोड़ दिया। 31 जनवरी, 43 को जर्मन सेना को करारी हार दी।

अमरीका ने भी 'लीजलैंड एक्ट' के अधीन युद्धरत राष्ट्रों को मदद देनी शुरू कर दी। खाद्यान एवं युद्ध सामग्री, युद्ध पोत, अस्त्र शस्त्र देकर मित्र राष्ट्रों का साथ दिया। तब जापान ने धुरी राष्ट्रों का साथ दिया। जापान ने जुलाई, 1941 को इण्डोचीन के सैनिक अड्डे के लिये और अक्टूबर तक सारा इण्डोचीन ही हड़प लिया और अमरीका के पर्ल हार्बर पर बिना घोषणा किये आक्रमण कर दिया। 7 दिसम्बर को जापानी सेनाएँ थाईलैंड, उत्तरी पूर्वी मलाया में उतर गईं। साथ ही अमरीका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

थाईलैंड, बेक आइलैंड, और गुआम के नाविक अड्डे और फिलीपाइन में अनेक स्थल जापान ने जीत लिये। 10 दिसम्बर 1941 को दो ब्रिटिश युद्ध पोत डुबो दिये गये। 27 फरवरी को सिंगापुर का पतन हो गया और जापान सेना मतीवान की खाड़ी तक जा पहुँची। 7 मार्च को रंगून खाली कर दिया। और 1 मई को मोड़ले ले लिया एक सप्ताह बाद ही जापानी सेनाएं बंगाल की खाड़ी में अक्याब तक पहुँचाईं। उधर न्यूगिनी, सोलोमन द्वीप ओर एडमिरेलिटी द्वीपों पर जापानी उतरायें किन्तु इसके एक माह बाद ही अमरीकी बेड़े ने एक अप्रत्याशित जीत प्राप्त की और जापान के 16 युद्ध पोत डुबो दिये और गुआडालकेनाल क्षेत्र सहित सारे द्वीपों पर अमरीकन छा गये।

1943 में युद्ध का रुख धुरी राष्ट्रों के लिये लाभकारी नहीं रहा। उत्तरी अफ्रीका में अमरीकी सेना की दूसरी कोर ने तथा फ्रांस के जनरल जिराड ने जर्मन क्षेत्र को भारी हानि पहुँचाई। मार्च के अन्त में कपेसिरात और ट्यूनिशिया पर अधिकार कर लिया। और एक सप्ताह बाद धुरी राष्ट्रों की अफ्रीका मोर्चे पर हार हो गई। यहाँ युद्ध बंदियों की संख्या 2 लाख थी। भूमध्य सागर में भी 1943 का वर्ष धुरी राष्ट्रों के लिये अच्छा नहीं रहा। जून 1943 में लेम्पडूसा और पेण्टेलरिया द्वीप तथा एक माह बाद सिसली द्वीप, 17 अगस्त को मेसीना का पतन हो गया। 25 जुलाई को इटली तानाशाह मुसोलिनी ने त्याग पत्र दे दिया। 28 अप्रैल, 1945 को उसका वध कर दिया गया। 5 अक्टूबर को नेपल्स जीत लिया गया। 10 अप्रैल, 1945 को बोलोन फिर स्पेजिया और फिर जिनेवा का पतन हुआ। दो जर्मन अधिकारियों ने जनरल एलेक्जेंडर के सामने 29 अप्रैल को एक संधि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। इटली ने भी 2 मई को हथियार डाल दिये।

जर्मनी ने पूर्वी यूरोपीय मोर्चे पर रूस की सेनाओं में स्टेलिन ग्राड में युद्ध किया और हार गई। दक्षिण में काकेशस उत्तर पश्चिम में कर्स्क पर रूस ने अधिकार कर लिया। फिर रास्ताव-आन-डान पर कब्जा कर लिया। डोनेटेज, खार कोव, जर्मनी से छीन लिया। मार्शल तिमोशे ने इलमेन झील के दक्षिण पूर्व में जर्मनी पर भारी आक्रमण किया और मास्को को बचा लिया। जुलाई, 1943 में ओरेल खारकोव स्मालेक्स ने 25 अक्टूबर प्रोपेत्रोस्क और 6 नवम्बर

को कीव ले लिया और 1944 के वसन्त के अन्त तक सारी जर्मनी सेना को अपनी सीमा तक धकेल दिया और कृत्रिम तेल के कारखाने नष्ट कर दिये।

पश्चिम यूरोप में ब्रिटेन पर आक्रमण की योजना विफल कर दी गई। 13 जून, 1944 को लंदन पर राकेट बमों से हमला हुआ ब्रिटिश सुरक्षा के लिये चेनल में चलते फिरते हार्बर बनाये गये। जो मालवेरी हार्बर कहलाते थे। जनरल आइजनहावर के नेतृत्व में फ्रांस के तट पर काई और शेखोर पर अधिकार कर लिया। जुलाई और अगस्त में सील नदी पार करके पेरिस भी मुक्त करा लिया गया। उधर जनरल डिगाल ने भी फ्रेंच राजधानी में प्रवेश किया। जनवरी, 1945 को राइनपार कर सार प्रदेश में प्रवेश किया और काबलेज के दक्षिण पश्चिम में नदी पार की और वार्मस लुडविग, शाफेन कर्स लोटर्न, सार ब्रूकेन और जेड स्पेन जीत लिये। 16 अप्रैल को बर्लिन पर आक्रमण हुआ 2 मई को बर्लिन का पतन हो गया। हिटलर ने आत्म हत्या कर ली और हालैण्ड डेनमार्क ने भी 7 मई को समर्पण कर दिया।

प्रशान्त महासागर में भी जापान की हालत खराब थी। 23 अक्टूबर, 1944 को जापानी बेड़ा फिलीपीन में नष्ट कर दिया गया। 1945 के आरम्भ में मुख्य द्वीप सूजन पर सफल आक्रमण किया गया। 5 जुलाई को जनरल मेक आर्थर ने फिलीपीन द्वीपों की जापानी अधिकार से मुक्ति की घोषणा कर दी। अब अमरीकी सेनाएँ जापानी मुख्य द्वीपों की ओर बढ़ रहे थी। मार्च में अड़्योजना पर जून में अमरीकी सेनाएँ मनीला में प्रवेश कर गईं। रेसक्यू द्वीप में आवीनाव पर अधिकार कर लिया था। योकोहामा, टोकियो, ओसाका, नागोदा, कोवे पर हवाई आक्रमणों से भारी हानि पहुँची थी।

## 28.14 मंचूरिया पर रूस का आक्रमण

सभी मोर्चों पर युद्ध अब निर्णायक स्थिति में पहुँच रहा था। धुरी राष्ट्रों की हार सुनिश्चित थी। ठीक इसी समय अप्रैल, 1944 को रूस ने जापान के साथ हुए अपने तटस्थता के समझौते को रद्द करते हुए 8 अगस्त को जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। और मंचूरिया की सीमा को पार कर अपनी सेनाओं को मुकडन की ओर बढ़ाया था। अब जापान के लिये एक और फ्रंट कायम हो गया था। अमरीका से वह सभी सामुद्रिक मोर्चों पर मात खा रहा था। अब मंचूरिया में रूस के साथ एक नया मोर्चा कायम हो गया था। मंचूरिया सामरिक दृष्टि से और युद्ध सामग्री की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। जापान ने अपनी सेनाएँ वहाँ बचाव के लिये भेजी। इसी समय 6 अगस्त को ही अमरीका ने हिरोशिमा पर और 9 अगस्त को नागासाकी पर अणु बम गिराये गये। विनाश अवर्णनीय था। नगर का 4 मील का क्षेत्र ईंटों व पत्थरों का ढेर बन गया था। हताहतों की संख्या लाखों में थी। जब 6 अगस्त की अणु बम घटना ने जापान पर कोई विशेष असर नहीं डाला तब ही रूस ने आठ अगस्त को मंचूरिया पर आक्रमण का दिया था और 9 अगस्त को नागासाकी पर दूसरा परमाणु बम गिराया गया और अब इस विनाश एवं नरसंहार ने जापान के नृशंस हृदय को भी हिला दिया। उधर मंचूरिया में भी उसकी सेनाएँ कोई उल्लेखनीय योग्यता नहीं दिखा सकी थी। चारों ओर अंधकार ही अंधकार था। धुरी राष्ट्रों के दो प्रबल स्तम्भ पहले ही गिर चुके थे। हिटलर और मुसोलिनी समाप्त हो गये थे। जापान ने 1945 को पोटस्टम के स्थान आत्मसमर्पण कर दिया। फिर 2 सितम्बर,

1945 को अमरीकी युद्ध पोत मिसौरी पर टोकियो की खाड़ी में जापानी दूत ने अमरीका के साथ संधि पर हस्ताक्षर कर दिये। इस प्रकार 6 वर्ष लम्बा यह युद्ध समाप्त हुआ।

## 28.15 संधि एवं शान्ति के प्रयास

लम्बे विश्व युद्ध के बाद शान्ति के प्रयास भी लम्बे चले। सभी विजेता राष्ट्र विजित राष्ट्रों से अपने अपने हिसाब को चुकता करने में व्यस्त हो गये।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह तय की गई कि सभी विजेता राष्ट्रों को अपने-अपने जीते हुए प्रदेश लौटाने पड़े और उनकी सीमाएं पुनः पहले की तरह ही सीमित क्षेत्र में समा गईं। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह हुई कि विजित राष्ट्रों से उनके उपनिवेश जहाँ-जहाँ भी थे छीन लिये गये और अपनी-अपनी सुविधानुसार विजेता राष्ट्रों ने आपस में बाँट लिये।

इटली के अफ्रीका उपनिवेश लीबिया, इरीटिया सोमाली लैंड छीन लिये गये। फ्रांस की सीमा पर स्थित 3000 वर्ग मील का प्रदेश यूगोस्लाविया को दे दिया गया। ट्रिस्ट स्वतंत्र कर दिया। जर्मनी के भी अफ्रीकी उपनिवेश लेकर दक्षिण अफ्रीका को दे दिये।

जर्मनी को 4 भागों में विभाजित कर दिया। पश्चिम के 3 भाग इंग्लैंड, फ्रांस व अमरीका के संरक्षण में रहे और पूर्वी भाग सोवियत रूस के संरक्षण में रहा। राजधानी बर्लिन भी दो भागों में बाँट दी गई। बीच में बिजली के तारों से प्रभावित दीवार खींच दी गई। आगे चलकर राष्ट्रवादी एवं साम्यवादी शक्तियों में भी सैद्धान्तिक संघर्ष चलता रहा।

जर्मनी पर भारी भरकम हर्जाना की रकम भी लादी दी गई। जब तक यह हर्जाना नहीं चुका दिया जाता जर्मनी के सारे औद्योगिक क्षेत्र एवं खनिज भंडार तथा अस्त्र शस्त्र की फैक्ट्रियाँ मिल राष्ट्रों के संरक्षण में दे दी गईं। जर्मनी व इटली की सेना का विघटन कर दिया गया और जहाजी बेड़े को विसैन्यीकरण कर दिया गया।

जापान पर अलग से शर्तें लाद दी गईं।

1. जापान के प्रशासन से तत्कालीन सत्तारूढ़ तत्वों को हटा दिया गया। जापानी प्रदेशों पर मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक परिषद शासन करेगी। जिसका अध्यक्ष अमरीका का जनरल मेक आर्थर होगा।

2. जापान की प्रभुसत्ता केवल 4 बड़े द्वीप तथा कुछ छोटे द्वीपों तक सीमित कर दी गई।

3. कोरिया का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार कर लिया।

4. वोनिन तथा र्यू क्यू द्वीपों पर अमरीकी ट्रस्टीशिप स्वीकार की गई।

5. चीन में अपने सब अधिकार छोड़ा दिये। युद्ध अपराधियों के विषय में न्यायालय के निर्णय स्वीकार किये जावेगे।

6. जापान में मित्रकर राष्ट्रों को व्यापार के क्षेत्र में परमानुग्रह का व्यवहार करने का अधिकार दिया गया मंचूरिया के विषय में अलग से कोई धारा नहीं है संभवतः मंचूरिया को चीन के हाथों में सौंप दिया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हो चुकी थी। सेनफ्रांसिस्को में 5 राष्ट्रों का सम्मेलन बुलाया गया किन्तु इसमें रूस को बोलने की अनुमति नहीं दी गई अतः सम्मेलन समाप्त हो गया। फिर 8 सितम्बर, 1951 को 48 राष्ट्रों ने इस जापान की संधि पर

हस्ताक्षर कर दिये केवल रूस, पोलैंड तथा चेकोस्लोवाकिया असहमत थे। अमरीका के साथ अलग से संधि की गई। जापान में अमरीकी सेना रहेगी और जापानी सैनिक अड्डे, हवाई तथा नौसेना के अड्डे पर अमरीका को अधिकार होगा।

अक्टूबर, 1956 को जापान का रूस के साथ भी समझौता हुआ किन्तु कोई औपचारिक शर्तें मंजूर नहीं हुईं। मंचूरिया का प्रश्न भी अनुत्तरित ही रहा। ऐसा लगता है चीन के अधिकार में मंचूरिया सुरक्षित है। 1950 में चीन में भी आन्तरिक संघर्ष समाप्त हो गया। माओत्सुंग के नेतृत्व में सम्पूर्ण चीन में साम्यवादी जनता के गणतंत्र की स्थापना हो गई। राष्ट्रवादी चीनी सरकार ने फारमूसा द्वीप पर शरण ली। साम्यवादी चीन ने सोवियत रूस के साथ मित्रता एवं पारस्परिक सहायता की संधि कर ली। मंचूरिया जापानी प्रभाव से बिल्कुल मुक्त घोषित कर दिया गया।

### 28.16 कोरिया संकट

कोरिया को स्वतंत्र राष्ट्र की संज्ञा दी गई थी। किन्तु एक नया संकट उत्पन्न हो गया था। जापान ने उत्तरी कोरिया में रूसी सेनाओं के आगे और दक्षिण कोरिया में अमरीकी सेना के आगे समर्पण किया था और 38° अक्षांश रेखा दोनों के बीच विभाजन रेखा थी उत्तरी व दक्षिणी कोरिया के मध्य युद्ध की स्थिति बन गई। संयुक्त राष्ट्र ने स्थिति के अध्ययन के लिये एक आयोग भेजा। उत्तरी कोरिया ने उसे घुसने ही नहीं दिया दक्षिणी कोरिया में चुनाव करवा कर गणतंत्र की स्थापना कर दी गई उसे संयुक्त राष्ट्र संघ ने मान्यता भी दे दी थी।

25 जून, 1950 को उत्तरी कोरिया ने युद्ध की घोषणा कर दी। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 16 राष्ट्रों की एक संयुक्त सेना जनरल मेक आर्थर के नेतृत्व में भेजी। 38° अक्षांश रेखा पर पहुंचते ही युद्ध का रुख ही बदल गया। चीन ने उत्तरी कोरिया की ओर से युद्ध में प्रवेश किया। महासभा के प्रयत्न से 27 जुलाई, 1953 को युद्ध विराम हो गया 38° अक्षांश विभाजन रेखा स्वीकार कर ली गई। मंचूरिया के साथ भी उत्तरी कोरिया के सम्बन्ध मित्रता पूर्ण होना चाहिये।

### 28.17 रूस चीन सम्बन्ध

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद रूसी चीनी सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण होने चाहिये। दोनों राष्ट्र साम्यवादी विचारधारा को मानते हैं किन्तु आश्चर्य होता है यह देख कर कि दोनों देशों के सम्बन्ध कटुता पूर्ण ही नहीं कभी-कभी तो शत्रुतापूर्ण दिखाई देते हैं। सैद्धान्तिक मतभेद भी बढ़ते ही गये हैं और सीमा विवाद भी उलझता ही जाता है।

स्टालिन ने बहुत की कठोरता पूर्वक लेनिनवाद में कई भ्रांतियां पैदा की है और चीन उनमें पड़ना नहीं चाहता वह पवित्र लेनिनवाद पर ही आश्रित है। माओत्सुंग की 1976 में मृत्यु के बाद यह आशा की जाती थी कि रूस व चीन के सम्बन्ध सुधर जावेंगे। 1978 में मध्य उच्चस्तरीय नेताओं ने पीकिंग में जाकर वार्ता चलाई भी थी। कोई नतीजा नहीं निकला। आपसी वैमनस्य बढ़ता ही जा रहा है रूस चीन सीमा पर बराबर सैनिक जमाव बढ़ रहा है आधा मंगोलिया जो रूस की सीमा से मिलता है और जिसे स्वतंत्र मंगोलिया प्रजातंत्र कहते हैं रूस के अधिकार में है। उसे चीन सदैव ही मांगता रहता है। चीन सोवियत सीमा पर नियमित सेना का जमाव है। वहाँ तोपे भी हैं तो प्रक्षेपास्त्र परीक्षण भी करता रहता है। एक रिपोर्ट के अनुसार

चीनी सीमा पर 365000 सोवियत सैनिक, 4000 टेक 1830 विमान तैनात है। और सोवियत सीमा पर 1,625,000 चीनी सैनिक, 5000 टेक, 2600 विमान तैनात है चीन, अमरीका तथा जर्मनी से हथियार भी खरीदता रहता है और रूस की आणविक शक्ति पर सबको ही शंका है। चीन का मानना है कि चीन की सीमा पर 32 लाख किलोमीटर क्षेत्र सोवियत रूस के अधीन है। मंचूरिया क्षेत्र भी इसी विवादास्पद घेरे में है। 12 अगस्त, 1976 को पीकिंग में जापान के विदेश मंत्री सुनाओ सुनोदा और चीनी विदेश मंत्री हुआइ हुआ ने मंत्री संधि पर हस्ताक्षर किये है। दोनों ने आर्थिक तथा सांस्कृतिक सहयोग के लिये सहमति दी है। दोनों, ने आर्थिक तथा सांस्कृतिक सहयोग के लिये सहमति दी है। दोनों एक दूसरे पर प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न नहीं करेंगे।

### 28.18 अभ्यासार्थ प्रश्न

- (1) मंचूरिया की समस्या क्या है ? रूस जापान और चीन के मध्य इसकी प्राकृतिक स्थिति का विस्तृत लेखा दीजिए।
- (2) मंचूरिया स्वतंत्र राष्ट्र क्यों नहीं बन पाया ? अपने विचारों की आलोचनात्मक विवेचना करे।
- (3) मंचूरिया पर जापान की गिद्ध दृष्टि क्यों-रहती है। चीन जापान के कटु सम्बन्धों के लिये मंचूरिया कहां उत्तरदायी है ?
- (4) मंगोलिया और कोरिया के संकट पर मंचूरिया की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
- (5) रूस चीन सम्बन्धों पर वर्तमान समय में क्या-क्या विवाद है उनके समाधान के लिये क्या प्रयत्न हो रहे है ?
- (6) मंचूरिया सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है चाहे इसका विस्तार अधिक नहीं है। समझाइये।

### 28.19 संदर्भ ग्रंथ सूची

- (1) 19वीं व बीसवीं शताब्दी में यूरोप-लिप्सन-अनु डा. एम. एल. शर्मा.
- (2) ए. हिस्ट्री आफ यूरोप-फर्डिनेन्ड शेवितल
- (3) यूरोप 19वीं व 20वीं सदी में ग्राट और टेपरले अनु बाबू राम गुप्त
- (4) आधुनिक यूरोप का इतिहास-सी. डी. हैजन, अनु. डा. सत्यनारायण दुबे
- (5) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध 1945 तक एम. एल शर्मा
- (6) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध-1981 तक डॉ. एम. एल. शर्मा
- (7) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध-डॉ. कालू राम शर्मा
- (8) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध-पुखराज जैन, मिश्रीलाल मंडोत
- (9) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध-डॉ. पी. डी. शर्मा
- (10) विश्व का इतिहास-डॉ घासीराम परिहार
- (11) मानव की कहानी-डॉ रामेश्वर गुप्त

## इकाई-29

### द्वितीय विश्व युद्ध की अवधि में सम्मेलन एवं समझौते -

#### इकाई की रूपरेखा

- 29.0 उद्देश्य
- 29.1 प्रस्तावना
- 29.2 एटलांटिक चार्टर
- 29.3 संयुक्त राष्ट्रीय घोषणा
- 29.4 मास्को सम्मेलन
- 29.5 कैरो सम्मेलन
- 29.6 तेहरान सम्मेलन
- 29.7 याल्टा सम्मेलन
- 29.8 सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन
- 29.9 पोट्सडम सम्मेलन
- 29.10 संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म
- 29.11 संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य
- 29.12 संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्त
- 29.13 सदस्यता
- 29.14 संयुक्त राष्ट्र संघ के अंग
- 29.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

#### 29.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पीछे हमारा यह उद्देश्य है कि किन उद्देश्यों को लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की, गई एवं इसकी पृष्ठभूमि क्या थी? इसके पूर्व भी शान्ति व्यवस्था बनाए रखने के लिए राष्ट्र संघ स्थापित किया गया था जो अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो सका। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जो वातावरण विश्व में पैदा हुआ था और शान्ति व्यवस्था बहाल करने एवं एक दूसरे से भयभीत होकर आपस में संधियां कर रहे थे। उनके बारे में बताना भी इस इकाई का उद्देश्य है। लेकिन द्वितीय महायुद्ध के मध्य में इस और अधिक प्रयत्न किये गये जिससे कि विश्व में संधियों, समझौतों और सम्मेलनों की बाढ़ आ गई थी। इन सभी समझौतों, सम्मेलनों, संधियों को बताते हुए संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना तक जो भी काम किये गये उनका अध्ययन इस इकाई में किया गया है।

#### 29.1 प्रस्तावना

राष्ट्रसंघ की स्थापना एवं सामूहिक सुरक्षा से विश्व में शान्ति व्यवस्था बनी रहने की आशा बंधी थी लेकिन व्यावहारिक रूप से यह व्यवस्था असफल रही। दो विश्व युद्धों के बीच की



घटनाओं से ऐसा लगता- था कि दूसरा विश्व युद्ध अधिक समय तक टाला नहीं जा सकेगा। हालांकि सभी राजनीतिज्ञ एवं विद्वान यह मानकर चल रहे थे कि ये सब झगड़े, विवाद समाप्त हो जायेंगे लेकिन उनकी सब उम्मीदें सित. 1939 में धूल में मिल गई।

सन् 1939 से 1945 तक द्वितीय विश्व युद्ध चला जो प्रथम विश्व युद्ध की अपेक्षा अधिक विध्वंसक, संहारक एवं वीभत्स था। इसकी पृष्ठभूमि में 1919 ई. में विभिन्न देशों के साथ विजेता राष्ट्रों ने जो संधियां की थीं। जर्मनी मुख्य रूप से युद्ध का जिम्मेदार ठहराया गया था और उस पर अपमानजनक संधि थोप दी गई जिससे जर्मन अपने अपमान का बदला लेने हेतु मचलने लगे और इस का नतीजा द्वितीय महायुद्ध ही थी।

आर्थिक साम्राज्यवाद के कारण भी विश्वयुद्ध हुआ अपने उद्योगों का विस्तार करने, कच्चा माल प्राप्त करने, तैयार माल का बाजार ढूंढने एवं उपनिवेश प्राप्ति के लिए भी एक दूसरे राष्ट्र में होड़ लग गई जिससे भी वातावरण में कटुता भर आई। प्रथम विश्व युद्ध के बाद विस्तारवादी, साम्राज्यवादी आक्रमणकारी नीति का अनुसरण विजित राष्ट्रों ने किया। अनेक राज्य इसकी भेंट चढ़ गये। इसके साथ ही राष्ट्रसंघ भी अपना कार्य निष्पक्ष एवं सफलता पूर्वक नहीं कर सका।

विश्व व्यापी मंदी का दौर भी इसी का परिणाम था जिससे बेरोजगारी और आर्थिक असुरक्षा बढ़ी जिससे उदारवादी पूंजीवाद एवं प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली अलोकप्रिय बन गई। लोग साम्यवाद और 'फासीवाद' की तरफ झुकने लगे। निशस्त्रीकरण की प्रतिज्ञा के बावजूद भी राष्ट्रों ने अपनी सैनिक शक्ति में तनिक कमी नहीं की और फासिस्टों के डर ने इस होड़ को और तेज कर दिया। सन् 1931 से 1939 तक महान कहलाने वाले राष्ट्र छोटे एवं कमजोर राष्ट्रों को अपनी साम्राज्यवादी भूख का शिकार बनाने लगे। जापान ने मंचूरिया पर आधिपत्य कर लिया, पोलैण्ड पर जर्मन आक्रमण ने द्वितीय विश्व युद्ध का बिगुल बजा दिया। धुरी राष्ट्रों पर विजय प्राप्त करने के लिए मित्र राष्ट्रों ने आपस में अनेक संधियां एवं सम्मेलन किये एवं अपने आपसी मतभेदों को सुलझाने का प्रयास किया एवं भविष्य निर्माण की भी अनेक योजनाएं बनाईं जिनका प्रभाव महायुद्ध भी समाप्ति के बाद राष्ट्रीय राजनीति पर पड़ा। ये संधियां एवं सम्मेलन इस प्रकार हैं-

## 29.2 एटलांटिक चार्टर

ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल एवं अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट अगस्त., 1941 में अटलांटिक महासागर में मिले और मित्र राष्ट्रों के उद्देश्यों का एक चार्टर बनाया। जिसका उद्देश्य धुरी राष्ट्रों द्वारा पराजित एवं उनके हमले के शिकार राज्यों की जनता में नाजियों से लड़ने का उत्साह पैदा करना, हिटलर के झूठे प्रचार के विरुद्ध पश्चिमी राज्यों के पक्ष को अधिक न्यायोचित प्रमाणित करके उनका सहयोग प्राप्त करना था। इस चार्टर की 8 धाराएं थीं जो निम्नांकित हैं-

- (i) अमेरिका एवं ब्रिटेन किसी प्रकार का अपना प्रादेशिक विस्तार नहीं चाहते
- (ii) दोनों राष्ट्र ऐसा कोई प्रादेशिक परिवर्तन, जो वहाँ की जनता की इच्छा के विपरीत हो, करना नहीं चाहते।

(iii) जिन लोगों को स्वशासन एवं सम्प्रभुता के अधिकार से वंचित कर दिया गया था, उन अधिकारों को पुनः वापिस दिलाना एवं अपनी शासन पद्धति को चुनने के अधिकार का सम्मान करना भी दोनों राष्ट्रों का उद्देश्य था

(iv) छोटे-बड़े या विजित-विजेता राष्ट्रों को आर्थिक समृद्धि हेतु व्यापार एवं कच्चे माल की सुविधाएं समान रूप से प्राप्त करने का प्रयत्न करना।

(v) वे चाहते हैं कि सभी देशों की श्रमिक दशा, आर्थिक विकास एवं सामाजिक सुरक्षा की प्राप्ति हेतु प्रयत्न किये जाएं।

(vi) दोनों ही यह आशा करते हैं कि युद्ध समाप्ति पर ऐसी शान्ति व्यवस्था लागू हो जिसमें मानव भय एवं दरिद्रता से मुक्त होकर जीवन यापन करें।

(vii) वे इस बात का प्रयत्न करेंगे कि सभी देशों के नागरिकों को समुद्रों एवं महासागरों पर निर्बाध आवागमन की स्वतंत्रता प्राप्त हो।

(viii) दोनों का विश्वास है कि समस्त राष्ट्र यथार्थ वादी एवं आध्यात्मिक कारणों से प्रेरित होकर शक्ति प्रयोग का परित्याग कर देंगे एवं भविष्य में शान्ति के लिए अनिवार्य रूप से निशस्त्रीकरण की योजना को क्रियान्वित करेंगे।

अटलांटिक चार्टर राष्ट्रपति रूजवेल्ट के भाषण में निहित "चार स्वतंत्रताओं" के अनुरूप था ।

### 29.3 संयुक्त राष्ट्रीय घोषणा

जर्मनी, जापान और इटली ने जब मित्र राष्ट्रों (अमेरिका सहित) पर आक्रमण कर दिया तो तीनों राष्ट्रों ने अपने पुराने समझौते की पुष्टि की और युद्ध के पश्चात एक नवीन जगत का स्वप्न दिखाया। इसके विरुद्ध मित्र राष्ट्रों ने भी, जिसमें 26 राष्ट्र शामिल थे, घोषणा की जो संयुक्त राष्ट्रीय घोषणा का नाम दिया। यह जन, 1942 की गई थी जिसमें अटलांटिक चार्टर की शर्तों को स्वीकार किया। सभी राष्ट्रों ने प्रतिज्ञा की कि वे अपने आर्थिक एवं सैनिक साधनों का धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध पूरी तरह उपयोग करेंगे तथा प्रत्येक ही राष्ट्र के विरोधी राष्ट्र से सहयोग करेंगे। साथ ही धुरी राष्ट्रों से कोई संधि या समझौता न करने की प्रतिज्ञा की।

### 29.4 मास्को सम्मेलन

जर्मनी ने रूस के खिलाफ भी लड़ाई मोल ले ली हालांकि रूस को प्रारंभ में बुरी तरह हार का सामना करना पड़ा तथापि रूसी सैनिक साहस से उनका सामना करते रहे मित्र राष्ट्रों ने उसे हर तरह की सहायता प्रदान की। अमेरिका और ब्रिटेन का पूरा सहयोग प्राप्त हो, इस उद्देश्य हेतु 30 अक्टू., 1943 को मास्को में एक सम्मेलन बुलाया गया तीनों राष्ट्रों ने अपने उद्देश्य निर्धारित कर इटली, आस्ट्रिया एवं जर्मनी के संबंध में भविष्य की नीतियां निर्धारित की। तीनों शक्तियों में सामंजस्य बना रहे एवं नवीन उत्पन्न परिस्थितियों का सामना करने का विचार विमर्श द्वारा समाधान किया जाये, इस उद्देश्य हेतु लन्दन में एक "यूरोपीय

परामर्श आयोग का गठन किया गया। आस्ट्रिया को सर्वप्रथम जर्मन दासता से मुक्ति एवं उस पर जर्मन आधिपत्य को अवैध ठहराने का निश्चय भी किया गया।

### 29.5 कैरो सम्मेलन

कैरो नगर में 22 से 26 अक्टू, 1943 तक एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें अमरीका, चीन, ब्रिटेन के प्रतिनिधि शामिल हुए। इसमें मित्र राष्ट्रों ने सुदूर-पूर्व में होने वाले युद्ध की रणनीति की घोषणा की एवं जापान को हराने का संकल्प किया। रूस ने जापान के खिलाफ युद्ध नहीं छोड़ा था इसलिए उसे इस सम्मेलन में आमंत्रित नहीं किया गया।

### 29.6 तेहरान सम्मेलन

इस सम्मेलन में रूस, ब्रिटेन एवं अमरीकी प्रतिनिधियों ने भाग लिया जो 28 नव. से 1 दिस., 1943 तक चला। इसका उद्देश्य तीनों राष्ट्रों द्वारा जर्मनी को हराने की अपनी-अपनी योजनाएं प्रस्तुत करना था। युद्ध एवं युद्धोत्तर शान्ति प्रयासों में साथ साथ कार्य करेंगे। इसके साथ ही निम्नांकित प्रस्ताव भी पारित किये गये- (i) धन, युद्ध सामग्री एवं सेना द्वारा तीनों राष्ट्र युगोस्लाविया की सहायता करके उसे मुक्त करायेगे। (ii) टर्की का युद्ध में शामिल होना शत्रु राष्ट्रों को पराजित करने हेतु आवश्यक माना गया। (iii) टर्की द्वारा युद्ध छोड़ने की व्यवस्था में यदि बुल्गारिया टर्की पर आक्रमण करता है तो रूस बुल्गारिया से युद्ध करेगा। (iv) मई, 1944 में नार्मण्डी की तरफ से जर्मनी के खिलाफ दूसरा मोर्चा खोलने का भी निश्चय हुआ। (v) ईरान को भी स्वतंत्र तथा प्रभुता सम्पन्न बनाने पर जोर दिया गया।

विश्व के अन्य राष्ट्रों से भी धुरी राष्ट्रों के खिलाफ मित्र राष्ट्रों का सहयोग करने की अपील की गई एवं संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना पर भी ध्यान आकर्षित किया गया।

### 29.7 याल्टा सम्मेलन

विश्व युद्ध के प्रारंभ से अन्त तक होने सम्मेलनों में याल्टा सम्मेलन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। रूस के प्रायद्वीप याल्टा में तेहरान सम्मेलन के ही प्रतिनिधि एकत्रित हुए जिसमें जर्मनी, सुदूर पूर्व, यूरोप एवं संयुक्त राष्ट्र संघ के विषय में महत्वपूर्ण निश्चय किये गये। अनेक निर्णय इस सम्मेलन में गुप्त रखे गये। महत्वपूर्ण निर्णय इस प्रकार हैं-

(i) **विश्व संगठन की योजना-** एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के निर्माण हेतु अप्रैल, 1945 में सेन-फ्रान्सिस्को में एक सम्मेलन बुलाया जाये। 1 मार्च, 1945 तक जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने वाले राष्ट्रों को भी सम्मेलन में बुलाया जाये। रूस के दो समाजवादी गणतंत्र-यूक्रेन एवं सफेद रूस-को अन्तर्राष्ट्रीय संघ का सदस्य स्वीकार करने का मामला यह सम्मेलन करेगा। तीनों राष्ट्रों को विश्व संगठन के विषय में चीन, फ्रांस, की सरकारों से विचार विमर्श करने का अधिकार दिया गया। साथ ही यह प्रस्ताव भी पारित किया गया कि रूस, चीन, फ्रांस अमेरिका, ब्रिटेन संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद के स्थाई सदस्य रहेंगे। यह संस्था ही प्रादेशिक धरोहर के विषय में विचार विमर्श करेगी।

(ii) **दासता उन्मूलन-**तीनों राष्ट्राध्यक्षों ने अपने देश की एवं मुक्ति प्राप्त देशों की जनता के हितों पर भी विचार-विमर्श किया। सभी राष्ट्रों को जनतंत्रीय साधनों द्वारा अपनी

राजनीतिक आर्थिक समस्याओं के निराकरण का अधिकार दिया जाये। नाजीवाद एवं फासीवाद के विनाश हेतु अन्तर्राष्ट्रीय संगठन द्वारा राष्ट्रीय जीवन का नवनिर्माण किया जाये।

(iii) **जर्मनी का निःशस्त्रीकरण**-जर्मनी के संबंध में निर्णय का अधिकार रूस, ब्रिटेन अमेरिका को ही होगा। तीनों राष्ट्र जर्मनी का निःशस्त्रीकरण इस हद तक करेंगे कि भविष्य में जर्मनी शान्ति एवं सुरक्षा को कोई खतरा पैदा न कर सके। जर्मनी का विभाजन करके कुछ प्रदेश ब्रिटेन व फ्रांस के अधिकार में दिये जायेंगे।

(iv) युद्ध अपराध का दायित्व-युद्ध अपराध एवं भयंकर युद्ध अपराधियों को छांटने का कार्य तीनों देशों के विदेश सचिव करेंगे।

(v) **पौलेण्ड की पुनर्व्यवस्था**-कुछ हद तक कर्जन रेखा में परिवर्तन कर पौलेण्ड की पूर्वी सीमा का निर्धारण किया जाये एवं पौलेण्ड की 'राष्ट्रीय एकता' की अस्थाई सरकार को वहां चुनाव कराने स्वीकृति दी जाये।

(vi) **यूगोस्लोवाकिया-यूगोस्लोवाकिया** के संबंध में यह निर्णय लिया गया कि वहाँ की नई सरकार का निर्माण मार्शल टीटो एवं सुबासिच के समझौते के अनुसार किया जाये।

(vii) **जापान के विरुद्ध युद्ध योजना**- (अ) यूरोप में युद्ध समाप्त होने के तीन महीने के भीतर रूस जापान के विरुद्ध युद्ध छेड़ देगा। (ब) इसके बदले में ब्रिटेन एवं अमेरिका रूस को निर्मांकित सुविधाएं देंगे (i) बाह्य मंगोलिया में यथास्थिति रखी जायेगी (ii) 1904 में जापान द्वारा छीने गये प्रदेश रूस को लौटा देने का निश्चय किया गया। (iii) रेल्वे एवं बाह्य मंगोलिया के संबंध में निर्णय के लिए चांगकाई शेक की स्वीकृति आवश्यक होगी जो स्टालिन के परामर्श से अमेरिका प्राप्त करेगा। एवं जापानी पराजय के बाद तीनों शक्तियाँ उपरोक्त सुविधाएं प्रदान करेंगे। चीन-रूस में दोस्ती का वायदा भी किया गया।

(viii) **जर्मनी तथा युद्ध-क्षतिपूर्ति**- इस सम्मेलन में तीनों शक्तियों में युद्ध क्षतिपूर्ति हेतु एक समझौता हुआ जो नगद न होकर किस्म में वसूल की जायेगी। युद्ध में विशेष रूप से भार सहने वालों को पहले क्षतिपूर्ति दी जायेगी। क्षतिपूर्ति निम्नांकित रूपों में जर्मनी अदा करेगा- (अ) युद्ध समाप्ति के बाद दो वर्ष की अवधि में जर्मनी का अपने आन्तरिक एवं बाह्य शस्त्र, मशीनें, जहाज, रेल्वे इंजिन, विदेशों में लगा धन, औद्योगिक तथा आदान-प्रदान के साधनों से कोई नाता नहीं रहेगा। (ब) मित्र राष्ट्रों को एक निश्चित अवधि तक जर्मनी अपने मौजूदा उत्पादन का वार्षिक सामान देता रहेगा। (स) जर्मन नागरिकों द्वारा श्रम कराया जायेगा। इस व्यवस्था को कार्यान्वित करने हेतु मित्र राष्ट्र एक क्षतिपूर्ति आयोग गठित करेंगे। जिसमें तीनों शक्तियों का प्रतिनिधित्व होगा।

## 29.8 सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन

अप्रैल, 25 से जून 26, 1945 तक एक सम्मेलन हुआ जिसका लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का निर्माण करना था। इसमें 50 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ट्रुमेन ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि यह सम्मेलन अपनी सम्पूर्ण शक्ति विश्व शान्ति को बनाये रखने के लिए एक संगठन के निर्माण में लगायेगा। हम युद्ध में अकेले नहीं थे इसलिए शान्ति स्थापना

में भी अकेले नहीं रह सकते। 26 जून, 1945 को 50 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये।

### 29.9 पोट्सडम सम्मेलन

7 मई, 1945 को हिटलर के उत्तराधिकारी (हिटलर ने आत्म हत्या कर ली थी) बिना शर्त मित्र राष्ट्रों के समक्ष हथियार डाल दिये। 16 जुलाई से 2 अग., 1945 तक जर्मन शहर बर्लिन के पोट्सडम स्थान पर यह सम्मेलन हुआ जो ऐतिहासिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। जर्मनी के साथ अंतिम संधि करने और जापान को अंतिम चेतावनी देना इस सम्मेलन का उद्देश्य था। इसमें अमरीकी राष्ट्रपति ट्रुमेन, ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली, स्टालिन, एवं व्यांग काई शेक (राष्ट्रीय चीन) शामिल हुए जहां निम्नांकित प्रस्ताव पारित किये गये-

1. विदेश मंत्रियों की परिषद-शान्ति समझौते करने हेतु प्रारंभिक तैयारियों के लिए अमेरिका, ब्रिटेन, सोवियत रूस, फ्रांस तथा चीन के विदेश मंत्रियों की एक परिषद बनाई जाये जिसका स्थाई सचिवालय लंदन में रखा जाय। इसकी प्रथम बैठक में इटली, रूमानिया, बल्गेरिया, हंगरी, फिनलैण्ड की संधियां, प्रादेशिक प्रश्नों का हल, जर्मनी के साथ की जाने वाली संधि इत्यादि मामले रखे जाये।

2. जर्मनी से अन्तिम संधि के सिद्धान्त- जर्मनी से अन्तिम संधि करने के 10 राजनैतिक सिद्धान्त, नौ आर्थिक सिद्धान्त, 10 क्षतिपूर्ति सिद्धान्त, जर्मन नौ सैना विभाजन के 6 सिद्धान्त जर्मनी से संधि की 4 शर्तें, जापान से संधि की शर्तें एवं राष्ट्र संघ के पुनर्जीवन की व्यवस्था के प्रस्ताव पारित किये गये।

### 29.10 संयुक्त राष्ट्र संघ का जन्म

द्वितीय विश्व युद्ध में जो भीषण नरसंहार एवं अभूतपूर्व विध्वंस हुआ था उसे देखकर विश्व के महान नेताओं ने (राष्ट्र संघ के अस्तित्व विहीन होने पर) विश्व शान्ति को स्थाई रूप से बनाये रखने हेतु एक प्रभावशाली विश्व स्तर के संगठन भी आवश्यकता को महसूस किया। इस विषय पर विचार विमर्श के लिए अक्टू, 1943 में मास्को में अमरीका, रूस, चीन, ब्रिटेन एवं फ्रांस का एक सम्मेलन आयोजित किया गया। माँस्को घोषणा को क्रियान्वित करने हेतु अगस्त 21 से सित. 7, 1944 की अवधि में अमरीका में डम्बरटोन-ओक्स में ये राष्ट्र फिर एकत्र हुए और लम्बे विचार-विनिमय के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य रूपरेखा के बारे में एकता हो गई। यहां पारित प्रस्तावों को अन्य राष्ट्रों में विचारार्थ भेजा गया। याल्टा सम्मेलन द्वारा रूस-अमरीकी मतभेद, जो मतदान के सिलसिले में था, सुलझा लिया गया।

**सैन-फ्रांसिस्को सम्मेलन-** धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में सहभागी राष्ट्रों को चार महा-शक्तियों द्वारा सैन-फ्रांसिस्को सम्मेलन में मार्च, 1945 में आमंत्रित किया गया। जिसमें करीब 50 राज्यों के प्रतिनिधियों ने डम्बरटोन-ओक्स के प्रस्तावों के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर को अन्तिम रूप प्रदान किया गया। 26 जून, 1945 को संयुक्त राष्ट्र के पूर्ण सम्मेलन में चार्टर को स्वीकार किये जाने के बाद सम्मेलन में शामिल प्रतिनिधियों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये जिसके परिणाम स्वरूप 24 अक्टू, 1945 से यह विधान लागू हुआ इस प्रकार प्रथम

विश्व युद्ध के बाद शान्ति स्थापना हेतु जो भी प्रयास किये गये थे वे या तो अधूरे थे या सहयोगी राष्ट्रों का उन्हें पूर्ण समर्थन नहीं मिला था। विश्व में पहली बार 50 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने एक मत होकर शान्ति स्थापना एवं विश्व की प्रगति हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर को स्वीकार कर लिया जो आज भी कायम है एवं जिन उद्देश्यों हेतु इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की गई थी आज भी वह उन्हें पूरा करने में सफल रहा है।

### 29.11 संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में 19 अध्याय और 111 धाराएं हैं। इस संगठन के चार प्रमुख उद्देश्यों का उल्लेख चार्टर की प्रस्तावना एवं अनुच्छेद (1) में किया गया है-जो निम्नांकित है-

(i) 'अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखना ' तथा इसकी प्राप्ति हेतु शान्ति भंग करने वाले तत्वों को सामूहिक उपायों द्वारा प्रभावी ढंग से रोकना, आक्रामक कार्यवाहियों का दमन करना एवं शान्ति व्यवस्था को भंग करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का न्याय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विधि सिद्धान्तों के अनुकूल शान्तिपूर्ण ढंग से समाधान करना।

(ii) लोगों के समान अधिकारों एवं आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के आधार पर सभी राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों को प्रोत्साहित करना एवं विश्व शान्ति बनाये रखने हेतु अन्य दूसरे उपाय करना।

(iii) विश्व की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं अन्य मानवतावादी समस्याओं के हल करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना, जाति, भाषा, रंग, धर्म एवं लिंग का भेदभाव किये बिना सबको मूलभूत स्वतंत्रतायें उपलब्ध कराना तथा मानवाधिकारों के प्रति सम्मान बढ़ाना।

(iv) इस संगठन को एक ऐसा केन्द्र बनाना जो विभिन्न राष्ट्रों द्वारा समान उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किये जा रहे प्रयत्नों में सामंजस्य स्थापित कर सके।

### 29.12 सिद्धान्त

इन उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुच्छेद (2) में निम्नांकित सिद्धान्त भी स्वीकार किये गये हैं-

(i) सभी सदस्य राष्ट्र अपने अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का निपटारा शान्तिमय उपायों द्वारा करेंगे जिसमें किसी प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय, शान्ति, सुरक्षा एवं न्याय के भंग होने का खतरा न हो।

(ii) शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखने हेतु, जहां तक आवश्यक होगा, यह संगठन उन राज्यों को भी जो इसके सदस्य नहीं हैं, चार्टर के सिद्धान्तानुसार आचरण करने की व्यवस्था करेगा।

(iii) सभी सदस्य राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय-संबंधों में न तो किसी राज्य की प्रादेशिक अखण्डता और न ही राजनैतिक स्वतंत्रता के विरुद्ध शक्ति प्रयोग करेंगे। उसे किसी प्रकार की धमकी भी न देंगे।

(iv) सभी सदस्य राष्ट्र चार्टर में वर्णित अपने कर्तव्यों का सद्भावना पूर्वक पालन करेंगे।

(v) संगठन के सभी छोटे-बड़े राष्ट्र सार्वभौमिक शक्ति सम्पन्न एवं समान हैं।

(vi) चार्टर के अनुसार की जाने वाली किसी भी कार्यवाही में सभी सदस्य राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ को हर संभव मदद देंगे।

(vii) संयुक्त राष्ट्र संघ को किसी भी ऐसे मामले में जो किसी राष्ट्र के आन्तरिक अधिकार क्षेत्र में आता हो हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।

### 29.13 सदस्यता

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में दो प्रकार के सदस्य राष्ट्रों की व्यवस्था की गई है- (i) वे राष्ट्र जिन्होंने सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन में स्वीकार किये सिद्धान्तों को माना था तथा उसकी पुष्टि की थी वे राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ के मौलिक अथवा प्रारंभिक सदस्य कहलाते हैं ऐसे राष्ट्रों की संख्या 51 थी। (ii) द्वितीय सदस्य राष्ट्र वे कहलाते हैं जो शान्ति प्रिय हो, जो चार्टर द्वारा निर्धारित कर्तव्यों को स्वीकार करने एवं इस संस्था की राय में उन कर्तव्यों का पालन करने योग्य हो, संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य बन सकते हैं। नये सदस्य, पांच स्थाई सदस्यों सहित, सुरक्षा-परिषद के सात सदस्यों की सिफारिश पर, एसेम्बली की स्वीकृति के आधार पर बनाये जा सकते हैं। किन्तु सुरक्षा परिषद के पांच स्थाई सदस्यों में से कोई भी अपने निषेधाधिकार (वीटो पावर) का इस्तेमाल करके किसी भी नये राज्य को सदस्य बनने से रोक सकता है।

यदि कोई सदस्य राष्ट्र चार्टर के सिद्धान्तों का लगातार उल्लंघन करता है तो उसे सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर एसेम्बली द्वारा निष्कासित भी किया जा सकता है एवं उसके विरुद्ध विश्व समुदाय से अनेक पाबन्दियां लगाने का आव्हान भी किया जा सकता है।

### 29.14 संयुक्त राष्ट्र संघ के अंग-

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुच्छेद 7 के मुताबिक इसके 6 प्रमुख अंग हैं जो संक्षेप में इस प्रकार हैं

(i) **महासभा-** इस सभा में संगठन के सभी सदस्य राष्ट्र शामिल हैं। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को अधिकाधिक 5 प्रतिनिधि भेजने एवं एक मत देने का अधिकार है। इसका अधिवेशन वर्ष में एक बार सितम्बर माह में होता है। इसका विशेष अधिवेशन बुलाने की भी व्यवस्था है। इसका अधिकार क्षेत्र एवं शक्तियां व्यापक है केलसेन के अनुसार "शायद ही कोई ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय विषय हो जिस पर यह सभा विचार या सिफारिश न कर सकती हो। संगठन के अंगों के सदस्यों एवं पदाधिकारियों के निर्वाचन अधिकार भी महासभा को प्राप्त है।

(ii) **सुरक्षा-परिषद-** चार्टर के पांचवे अध्याय में सुरक्षा परिषद के कार्यों, संगठन एवं अधिकारों का वर्णन किया गया है। इसके अमरीका, रूस, चीन, फ्रांस व ब्रिटेन पांच स्थाई एवं महासभा द्वारा निर्वाचित अस्थाई सदस्य दो वर्ष के लिए होते हैं। इसका मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व्यवस्था बनाये रखना है।

(iii) **आर्थिक एवं सामाजिक परिषद-** इस परिषद के सदस्यों की संख्या वर्तमान में 27 है। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा मानव जाति के लिए कल्याणकारी व्यवस्था लागू करने पर बल दिया गया है। इस परिषद को संघ के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य संबंधी एवं अन्य विभिन्न प्रकार के

कार्यों को सम्पादित करने का दायित्व सौंपा है। यह परिषद महासभा के नियंत्रण में कार्य करती है।

(iv) **न्यासिता परिषद-** राष्ट्र संघ की अधिदेश पद्धति के स्थान पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने "न्यासाधारित पद्धति" अपनाई जिसका मूल सिद्धान्त यह है कि उन्नत एवं विकसित राष्ट्र अस्वशासित एवं अविकसित प्रदेशों का प्रशासन, न्यास या धरोहर के रूप में करें। जिससे वहां की जनता का शोषण न हो एवं वह विकास के कार्यों पर अग्रसर हो सके।

(v) **अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय-** चार्टर के 14 वे अध्याय के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को संगठन का एक प्रमुख अंग माना गया है। इसमें 15 न्यायाधीश होते हैं जो महासभा, सुरक्षा परिषद द्वारा समवर्ती रूप से निर्वाचित किये जाते हैं। इनका कार्यकाल नौ वर्ष का होता है। यह न्यायालय हालैण्ड के हेग शहर के 'शान्ति प्रसाद' में स्थित है।

(vi) **सचिवालय-** संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यों के सम्पादन हेतु सचिवालय की व्यवस्था की गई है। जो न्यूयार्क शहर में स्थित है। महासचिव सचिवालय का अध्यक्ष एवं संगठन का प्रमुख प्रशासकीय अधिकारी होता है। जिसकी नियुक्ति सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर महा सभा द्वारा की जाती है।

## 29.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एफ. एल. वेल्स-यूरोप सिस 1914, इन इट्स वर्ल्ड सेटिंग
2. ब्लेक व हेल्मरीख-ट्वन्टियथ सेन्चुरी यूरोप-ए हिस्ट्री
3. पामर व पर्किन्स-इंटरनेशनल रिलेशन्स
4. गुडरिच व साइमन्स-द यूनाइटेड नेशन्स एण्ड मेन्टीनेस आफ इंटरनेशनल पीस एण्ड सिक्योरिटी
5. केलसेन-दी ला आफ दी यूनाइटेड नेशन्स



MAHI-03/ISBN13/978-81-8496-262-8